प्रधान सम्पादक
म० विनयसागर

प्राकृत भारती पुष्प — 42

अष्टपाहुड-चयनिका

□ डॉ. कमलचन्द सोगाणी

प्राकृत भारती अकादमी
जयपुर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्राकृत भारती पुष्प–42

अष्टपाहुड - चयनिका

सम्पादक :

डॉ० कमलचन्द सोगाणी

प्रोफेसर, दर्शन विभाग

मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय

उदयपुर (राजस्थान)

प्रकाशक :

प्राकृत भारती अकादमी

जयपुर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशक :
देवेन्द्रराज मेहता
सचिव, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर

❑

पंचम संस्करण : 1998

❑

मूल्य : 20.00 रुपए

❑

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

❑

प्राप्ति-स्थल :
प्राकृत भारती अकादमी
3826, यति श्यामलालजी का उपाश्रय
मोतीसिंह भोमियों का रास्ता
जयपुर - 302003 (राजस्थान)

❑

मुद्रक :
अनिता प्रिन्टर्स
गोविन्द नगर (पूर्व), जयपुर-2
फोन : 47748, 631133

ASTAPAHUDA-CAYANIKA/Philosophy
Kamal Chand Sogani/Udaipur/1987

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री सन्मति पुस्तकालय के संस्थापक

स्व. मास्टर मोतीलालजी संघी

एवं

भारतीय संस्कृति के विवेचक

स्व. पं. चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ

को

सादर समर्पित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रमणिका

		पृष्ठ
1.	प्रकाशकीय	
2.	प्रस्तावना	i-xxiv
3.	अष्टपाहुड चयनिका की गाथाएं एवं हिन्दी अनुवाद	2-35
4.	संकेत - सूची	36-37
5.	व्याकरणिक विश्लेषण	38-65
6.	पाठ-सुधार	66-67
7.	अष्टपाहुड चयनिका एवं अष्टपाहुड गाथा-क्रम	68-70
8.	सहायक पुस्तकें एवं कोश	71-72
9.	शुद्धिपत्र	73

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

आचार्य कुन्दकुन्द जैन सैद्धान्तिक साहित्य एवं शौरसेनी प्राकृत के मूर्धन्य मनीषी हैं और अनेकान्त दृष्टि के प्रबल समर्थक/प्रचारक भी। इनकी निर्मित कृतियाँ—समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय और नियमसार—जैन दर्शन, कर्म-सिद्धान्त, अनेकान्तवाद और रत्नत्रयी का प्रमुखता से विश्लेषण करने वाली हैं। इनकी उक्त कृतियाँ शताब्दियों से समादृत और स्वाध्याय का अंग रही हैं।

इनकी एक और प्रसिद्ध कृति है—अट्ठपाहुड अर्थात् अष्टप्राभृत। इसमें दर्शन, सूत्र, चारित्र, बोध, भाव, मोक्ष, लिंग और शील संज्ञक आठ लघुकायिक पाहुडों का संग्रह है। इन कृतियों में आचार्य ने उक्त विषयों का संक्षेप शैली में बहुत सुन्दर प्रतिपादन किया है। इन आठों की गाथा संख्या 503 है।

सम्यग् दृष्टि का लक्षण देते हुए आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं—"जो अरहंत द्वारा कथित सूत्र के अर्थ को, जीव-अजीव आदि बहुविध पदार्थों को तथा हेय और उपादेय को भी जानता है, वह निश्चय ही सम्यग्दृष्टि होता है।" (गाथा 12)

इसी प्रकार बाह्य क्रिया-समर्थकों के प्रति आचार्य का दृष्टिकोण है—"यदि (कोई) आत्मा को नहीं चाहता है, परन्तु अन्य सकल धर्म क्रियाओं को करता रहता है, तब भी वह सिद्धि/पूर्णता प्राप्त नहीं करता है। अतः (ऐसा बाह्य क्रियावादी) संसार (मानसिक तनाव) में स्थित कहा गया है।" (गाथा 14)

इसी अष्टपाहुड के सुरभित पुष्पों में से 100 का चयन कर डॉ. सोगाणी जी ने प्रस्तुत चयनिका तैयार की है और अपनी विशिष्ट शैली में व्याकरण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की दृष्टि से शाब्दिक अनुवाद, प्रत्येक शब्द का मूल रूप, अर्थ और विभक्ति आदि का सरल पद्धति से विश्लेषण भी किया है।

डॉ. कमलचन्द जी सोगाणी, जैन दर्शन और प्राकृत भाषा के माने हुए विद्वान हैं और प्राकृत वाङ्मय के अनन्य उपासक भी। वर्तमान में मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर में दर्शन-विभाग में प्रोफेसर पद पर कार्यरत हैं।

हमें प्रसन्नता है कि श्री सोगाणी जी द्वारा सम्पादित चयनिका संज्ञक चार पुस्तकें—आचारांग-चयनिका, वाक्पतिराज की लोकानुभूति, समणसुत्त चयनिका, दशवैकालिक-चयनिका—प्राकृत भारती अकादमी पूर्व में ही प्रकाशित कर चुकी है और प्राकृत भारती के पुष्प 42वें के रूप में यह "अष्टपाहुड चयनिका" प्रकाशित की जा रही है तथा शीघ्र ही प्रवचनसार, समयसार और परमात्मप्रकाश की चयनिकायें भी प्रकाशित की जायेंगी।

हमें आशा है कि पाठकगण इस चयनिका के माध्यम से आचार्य कुन्दकुन्द के दृष्टिकोण को सुगमता के साथ हृदयंगम कर सकेंगे और प्राकृत भाषा के जानकार भी बन सकेंगे।

म. विनयसागर
निदेशक एवं संयुक्त सचिव

देवेन्द्रराज मेहता
सचिव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

यह सर्व विदित है कि मनुष्य अपनी प्रारम्भिक अवस्था से ही रंगों को देखता है, ध्वनियों को सुनता है, स्पर्शों का अनुभव करता है, स्वादों को चखता है तथा गन्धों को ग्रहण करता है। इस तरह उसकी सभी इन्द्रियाँ सक्रिय होती हैं। वह जानता है कि उसके चारों ओर पहाड़ हैं, वृक्ष हैं, मकान हैं, मिट्टी के टीले हैं, पत्थर हैं इत्यादि। आकाश में वह सूर्य, चन्द्रमा और तारों को देखता है। ये सभी वस्तुएँ उसके तथ्यात्मक जगत का निर्माण करती हैं। इस प्रकार वह विविध वस्तुओं के बीच अपने को पाता है। उन्हीं वस्तुओं से वह भोजन, पानी, हवा आदि प्राप्त कर अपना जीवन चलाता है। उन वस्तुओं का उपयोग अपने लिए करने के कारण वह वस्तु-जगत का एक प्रकार से सम्राट बन जाता है। अपनी विविध इच्छाओं की तृप्ति भी बहुत सीमा तक वह वस्तु-जगत से ही कर लेता है। यह मनुष्य की चेतना का एक आयाम है।

धीरे-धीरे मनुष्य की चेतना एक नया मोड़ लेती है। मनुष्य समझने लगता है कि इस जगत में उसके जैसे दूसरे मनुष्य भी हैं, जो उसकी तरह हँसते हैं रोते हैं, सुखी-दुःखी होते हैं। वे उसकी तरह विचारों, भावनाओं और क्रियाओं की अभिव्यक्ति करते हैं। चूँकि मनुष्य अपने चारों ओर की वस्तुओं का उपयोग अपने लिए करने का अभ्यस्त होता है, अतः वह अपनी इस प्रवृत्ति के वशीभूत होकर मनुष्यों का उपयोग भी अपनी आकांक्षाओं और आशाओं की पूर्ति के लिए ही करता है। वह चाहने लगता है कि सभी उसी के लिए जीएँ। उसकी निगाह में दूसरे मनुष्य वस्तुओं से अधिक कुछ नहीं होते हैं। किन्तु उसकी यह प्रवृत्ति बहुत समय तक चल नहीं पाती है। इसका कारण स्पष्ट है। दूसरे मनुष्य भी इसी प्रकार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की प्रवृत्ति में रत होते हैं। इसके फलस्वरूप उनमें शक्ति-वृद्धि की महत्वाकांक्षा का उदय होता है। जो मनुष्य शक्ति-वृद्धि में सफल होता है, वह दूसरे मनुष्यों का वस्तुओं की तरह उपयोग करने में समर्थ हो जाता है। पर मनुष्य की यह स्थिति घोर तनाव की स्थिति होती है। अधिकांश मनुष्य जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इस तनाव की स्थिति में से गुजर चुके होते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह तनाव लम्बे समय तक मनुष्य के लिए असहनीय होता है। इस असहनीय तनाव के साथ-साथ मनुष्य कभी न कभी दूसरे मनुष्यों का वस्तुओं की तरह उपयोग करने में असफल हो जाता है। ये क्षण उसके पुनर्विचार के क्षण होते हैं। वह गहराई से मनुष्य-प्रकृति के विषय में सोचना प्रारम्भ करता है, जिसके फलस्वरूप उसमें सहसा प्रत्येक मनुष्य के लिए सम्मान-भाव का उदय होता है। वह अब मनुष्य-मनुष्य की समानता और उसकी स्वतन्त्रता का पोषक बनने लगता है। वह अब उसका अपने लिए उपयोग करने के बजाय अपना उपयोग उनके लिए करना चाहता है। वह उनका शोषण करने के स्थान पर उनके विकास के लिए चिंतन प्रारंभ करता है। वह स्व-उदय के बजाय सर्वोदय का इच्छुक हो जाता है। वह सेवा लेने के स्थान पर सेवा करने को महत्व देने लगता है। उसकी यह प्रवृत्ति उसे तनाव-मुक्त कर देती है और वह एक प्रकार से विशिष्ट व्यक्ति बन जाता है। उसमें एक असाधारण अनुभूति का जन्म होता है। इस अनुभूति को ही हम मूल्यों की अनुभूति कहते हैं। वह अब वस्तु-जगत में जीते हुए भी मूल्य-जगत में जाने लगता है। उसका मूल्य-जगत में जीना धीरे-धीरे गहराई की ओर बढ़ता जाता है। वह अब मानव-मूल्यों की खोज में संलग्न हो जाता है। वह मूल्यों के लिए ही जीता है और समाज में उनकी अनुभूति बढ़े इसके लिए अपना जीवन समर्पित कर देता है। यह मनुष्य की चेतना का एक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दूसरा आयाम है।

आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा प्रदत्त अष्टपाहुड[1] (आठ(ग्रन्थों) की भेंट) समाज में मूल्यात्मक चेतना के विकास के लिए समर्पित है। ये आठ ग्रन्थ मनुष्यों को मूल्यात्मक तुष्टि की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करते हैं। जीवन का संवेगात्मक पक्ष ही मूल्यात्मक तुष्टि का आधार होता है। ये आठ ग्रन्थ (दर्शनपाहुड, सूत्रपाहुड, चारित्रपाहुड, बोधपाहुड, भावपाहुड, मोक्षपाहुड, लिंगपाहुड और शीलपाहुड) जीवन को समग्ररूप (अनेकान्तिक रूप) से देखने की दृष्टि प्रदान करते हैं। मनुष्य के जीवन में ज्ञान और संवेग एक दूसरे से गुथे हुए वर्तमान रहते हैं। प्रत्येक मूल्यात्मक अनुभूति

---

1. अष्टपाहुड में 503 गाथाएँ हैं। इनमें से ही हमने 100 गाथाओं का चयन 'अष्टपाहुड-चयनिका' के अन्तर्गत किया है। अष्टपाहुड में [दर्शन-पाहुड (36), सूत्रपाहुड (27), चारित्रपाहुड (45), बोधपाहुड (62), भावपाहुड (165), मोक्षपाहुड (106) लिंगपाहुड (22) और शील पाहुड (40)] ये आठ ग्रन्थ सम्मिलित हैं। इनके रचयिता आचार्य कुन्दकुन्द हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द दक्षिण के निवासी थे। इनका मूल स्थान कोण्ड-कुन्द था जो आंध्र प्रदेश के अनन्तपुर जिले में स्थित कोनकोण्डल है। इनका समय 1 ई. पूर्व से लगाकर 528 ई. पश्चात् तक माना गया है। डा. ए.एन. उपाध्ये के अनुसार इनका समय ईसवी सन् के प्रारम्भ में रखा गया है। "I am inclined to believe, after this long survey of the available material, that Kundakunda's age lies at the beginning of the Christian era" (P. 21 Introduction of Pravacanasara)

आचार्य कुन्दकुन्द के सभी ग्रन्थ (समयसार, प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय सार, नियमसार और अष्टपाहुड) अध्यात्म प्रधान शैली में लिखे गये होने से अध्यात्म प्रेमी लोगों के लिए आकर्षण के केन्द्र रहे हैं। अष्टपाहुड-चयनिका के अतिरिक्त समयसार-चयनिका और प्रवचनसार-चयनिका भी शीघ्र ही प्रकाशित होगी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य के ज्ञानात्मक और संवेगात्मक पक्ष की मिली-जुली अनुभूति होती है। दुःखियों को देखकर करुणा की मूल्यात्मक अनुभूति में दुखियों के होने का ज्ञान और करुणा का संवेग दोनों ही उपस्थित हैं। यहां यह भी समझना चाहिए कि ज्ञान और संवेग एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। ज्ञान चिन्तनात्मक बुद्धि के माध्यम से भय, शोक क्रोध, ईर्ष्या, घृणा, चिन्ता, लोभ, काम, माया, आदि संवेगों (कषायों) पर अंकुश लगा सकता है। साथ में दया, प्रेम, मैत्री, कृतज्ञता आदि संवेगों को प्रोत्साहित कर सकता है और इनको उचित दिशा प्रदान कर सकता है। इसी तरह संवेग भी चिन्तनात्मक बुद्धि को प्रभावित करते हैं। लोभ, क्रोध, घृणा, ईर्ष्या आदि संवेग चिंतनात्मक बुद्धिके कथनों को दबा सकते हैं और दया, प्रेम कृतज्ञता आदि संवेग बुद्धि पर हावी होकर उसको कैसी भी दिशा प्रदान कर सकते हैं। कहा जाता है कि काम क्रोध आदि के आवेश में व्यक्ति बुद्धि खो देता है और बुद्धि के अंकुश के बिना दया, प्रेम आदि संवेग किसी भी तरफ प्रवाहित हो जाते हैं। इस तरह से ज्ञान और संवेग एक दूसरे को प्रभावित करते हैं और कोई भी क्रिया इनके मिले-जुले रूप से ही उत्पन्न होती है। इसी विश्वास के कारण उपदेश का श्रवण और मूल्यात्मक साहित्य का अध्ययन महत्वपूर्ण माने गये हैं। इस तरह इनके माध्यम से बुद्धि और संवेगों का शिक्षण किसी सीमा तक हो ही जाता है। यहाँ यह कहना उचित प्रतीत होता है कि नैतिकता-आध्यत्मिक मूल्यो के जागरण के लिए बुद्धि और हृदय (संवेग) दोनों ही आवश्यक हैं। किसी एक पर ही जीवन को आश्रित करना एकान्त होगा और मूल्यात्मक जीवन के लिए अभिशाप बन जायेगा। समग्र (अनेकान्त) दृष्टि इन दोनों के महत्व को स्वीकार करने से ही उत्पन्न होती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मूल्यात्मक चेतना के विकास

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के लिये ज्ञान और संवेग का मिला-जुला रूप आवश्यक है। आचार्य कुन्दकुन्द ने इस मिले-जुले रूप को ही 'भाव' कहा है। परम शान्ति की यात्रा के लिए 'भाव' के विभिन्न आयामों को सर्व प्रथम समझना चाहिए (३०)। जीवन में गुण-दोषों का आधार 'भाव' ही है (२८)। मनुष्य मानसिक समता की प्राप्ति के लिए विभिन्न बाह्य वेश धारण करता है, किन्तु आचार्य कुन्दकुन्द का कथन है कि (शुभ) भाव ही प्रधान वेश होता है, केवल बाह्य वेश सचाई नहीं है (२८)। शुभ भाव रहित वेश से कोई लाभ नहीं होता है (३०, ९६) बाह्य परिग्रह का त्याग भाव-शुद्धि के लिए किया जाता है (२८)। जिसने अशुद्ध भावों को त्याग दिया है वह ही मुक्त है (३२)। जो देहादि की आसक्ति से मुक्त है वह ही भावरूपी वेश को धारण करने वाला साधु होता है (३३)। धर्म का (शुभ)-भाव रहित श्रवण व पठन उपयोगी नहीं होता है (३९)। भाव-रहित व्यक्तियों के लिए बाह्य परिग्रह का त्याग, पर्वत, नदी, गुफा आदि में रहना—ये सब निरर्थक हैं (४३)। जब आचार्य कुन्दकुन्द यह कहते हैं कि बन्धन और मुक्ति का संबंध भाव से ही है (४६), तो इसका अभिप्राय यह है कि 'भाव' में जो संवेगात्मक अंश है वह ही बन्धन-मुक्ति की प्रक्रिया में मूलभूत होता है, ज्ञानांश का इस प्रक्रिया से कोई संबंध नहीं होता है। भाव में जो ज्ञानांश रहता है वह भावों में परिवर्तन और उनको दिशा प्रदान करने के लिए उपस्थित रहता है। ज्ञानांश के बिना संवेग अन्धे होते हैं और संवेग के बिना ज्ञान शुष्क और प्रेरणाहीन होता है।

नैतिक दृष्टिकोण से 'भाव' दो प्रकार के होते हैं : (१) शुभ भाव और (२) अशुभ भाव (४०)। गुणियों में अनुराग, इन्द्रिय-संयम में रुचि, दुष्टों के प्रति असहयोग व उनका विरोध, दुःखियों के प्रति करुणा, चित्त में विनय, सरलता, सन्तोष आदि का रहना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शुभ भाव हैं। दुष्टों के प्रति अनुराग, अनुचित दिशा में दया का प्रवाह, प्राणियों की हिंसा, निर्दयता, इन्द्रिय-विषयों में लोलुपता, चित्त में क्रोध, अहंकार, कुटिलता, लोभ आदि का रहना अशुभ भाव हैं।

भाव, इच्छा और चिन्तनात्मक बुद्धि :

यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि भाव अपनी तृप्ति के लिए अनेक इच्छाओं को जन्म दे देते हैं जो उद्देश्यात्मक क्रियाओं में अभिव्यक्त होती हैं। यह कहा जा चुका है कि 'भाव' संवेग और ज्ञान के मिले-जुले रूप का नाम है। भाव में निहित संवेग चिन्तनात्मक बुद्धि के माध्यम से इच्छाओं में परिणत होकर अपनी तृप्ति की दिशा में सक्रिय हो जाते हैं। धीरे-धीरे इच्छा अपने उद्देश्य की ओर बढ़ने में क्रियाशील बनने लगती है और भाव में स्थित संवेग की तृप्ति को साकार रूप प्रदान करने का संघर्ष करती है। जैसे, किसी के प्रति निर्दयता का संवेग एक अशुभ भाव है। यह संवेग चिन्तनात्मक बुद्धि के माध्यम से संबंधित व्यक्ति की हिंसा करने की इच्छा या उसको भूखे-प्यासे मारने की इच्छा में परिणत होकर अपनी तृप्ति की दिशा में सक्रिय हो जाता है। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि इच्छा और चिन्तनात्मक बुद्धि एक दूसरे से घनिष्ट रूप में संबंधित रहती हैं। जहाँ इच्छा वर्तमान है वहाँ चिन्तनात्मक बुद्धि वर्तमान रहती है और जहाँ चिन्तनात्मक बुद्धि वर्तमान है वहाँ इच्छा वर्तमान रहती है। इच्छा मन में सक्रिय होती है, वचन के माध्यम से दूसरों तक पहुँचाई जा सकती है और शरीर को अनेक प्रकार से क्रियाशील बनाती है और हर स्थिति में वास्तविक बनना चाहती है, जिससे वह तृप्त हो सके। इच्छा की उत्पत्ति और तृप्ति की आकांक्षा सदैव साथ-साथ होती है। तृप्ति के लिए चिन्तनात्मक बुद्धि योजनाएँ बनाती है। इस तरह से हमारा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सारा जीवन (शुभ-अशुभ) इच्छाओं का पिण्ड बना रहता है। इसके फलस्वरूप व्यक्ति अपने चिन्तनात्मक स्तर के अनुरूप इनकी तृप्ति का आयोजन करने में लीन रहता है। यह आयोजन जीवन के प्रारम्भिक काल में अचेतन रहता और परिपक्व अवस्था में चेतन हो जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि चिन्तनात्मक बुद्धि संवेग-जनित इच्छाओं से प्रेरित होकर उद्देश्यों की पूर्ति में साधनों को जुटाती है और तृप्ति तक व्यक्ति को पहुंचाने का प्रयास करती है। यहां यह ध्यान देने योग्य है कि जब चिन्तनात्मक बुद्धि परिणामों को देखने में कुशल हो जाती है, तो कई इच्छाएं परिवर्तित भी की जा सकती हैं और इसके समुचित विकास से उच्च उद्देश्यों के आविर्भाव से निम्न कोटि की इच्छाएं नष्ट भी हो सकती हैं। जैसे, शिकार की इच्छा, शराब पीने इच्छा, अति भोजन की इच्छा, लोभ के वशीभूत अन्याय से धन कमाने की इच्छा, दृष्टों के प्रति दया की इच्छा आदि के परिणामों को व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में कुप्रभाव डालते हुए देखने से उनमें परिवर्तन हो जाता है और कभी कभी वे इच्छाएँ पूर्णतया नष्ट भी हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त जीवन में उच्च उद्देश्यों के प्रति समर्पित होने से भी अशुभ इच्छाएँ समाप्त हो जाती हैं। इस तरह से हम देखते हैं कि चिन्तनात्मक बुद्धि और इच्छाएँ एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

अशुभ भाव और मानसिक तनाव की प्रक्रिया :

यह कहा जा चुका है कि मनुष्यों में इच्छाएं वर्तमान रहती हैं और वे अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए नाना प्रकार की क्रियाओं में अभिव्यक्त होती हैं। समाज में विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों को हम नैतिक दृष्टिकोण से दो भागों में विभाजित कर सकते हैं : (१) शुभ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावों में रत तथा (२) अशुभ भावों में रत। पहिले हम अशुभ भावों में जीने वाले व्यक्तियों में मानसिक तनाव की प्रक्रिया को समझने का प्रयास करेंगे। अशुभ-भाव व्यक्ति में कई प्रकार से मानसिक तनाव उत्पन्न करते हैं। इनको ही आर्त-रौद्र ध्यान कहा गया है (४०)। अशुभ भावों से उत्पन्न मानसिक तनाव को निम्नलिखित रूप से समझा जा सकता है।

(१) अशुभ-भाव जिन इच्छाओं को जन्म देते हैं चिन्तनात्मक बुद्धि उनको पूर्ण करने की योजना बनाती है, किन्तु सामाजिक वातावरण उनकी पूर्ति को रोकता है, क्योंकि वे कानून, नैतिकता और न्याय के विरुद्ध होती हैं। जैसे लोभ के वशीभूत होकर मायाचारी से धन कमाना, आवश्यक वस्तुओं का संग्रह करके दूसरों के लिए कठिनाइयाँ पैदा करना, लोगों को ठगने में दक्षता प्राप्त कर लेना, हिंसा से आंतक फैलाना, झूठ और चोरी में क्रियाशील होना, कमजोर वर्ग का दुरुपयोग करना, दूसरों को ईर्ष्यावश हानि पहुँचाना, दूसरों का अहंकारवश अपमान करना, अपने आश्रितों का शोषण करना, अपने कर्तव्य को निभाने में आलसी होना, गरीबों से दुर्व्यवहार करना, काम वासना में लिप्त होना, कलहकारी प्रवृत्तियों में रस लेना आदि –ये अशुभ भाव सभी व्यक्तियों में घोर मानसिक तनाव पैदा करते हैं, क्योंकि समाज इनकी तृप्ति में व्यक्ति की इच्छा के विरुद्ध समुचित बाधाएँ उपस्थित करता है।

(२) (क) कुछ अशुभ भाव ऐसे होते हैं जिनका कुप्रभाव दूसरों पर इतना नहीं पड़ता जितना स्वयं व्यक्ति पर पड़ता है और व्यक्ति विभिन्न कारणों से दुःखात्मक संवेगों में ही जीने लगता है। इनसे उसके व्यक्तित्व पर इतना आन्तरिक दबाव पड़ता है कि वह विकासोन्मुख नहीं हो सकता है। चिन्तनात्मक बुद्धि कई बार असहाय हो जाती है और कई बार गंभीर कठिनाइयों में फँस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाती है। इससे हमारी सद्इच्छाएँ कुंठित हो जाती हैं और व्यक्ति चिन्ताग्रस्त ही रहता है।

(२) (क) (i) दुःखात्मक संवेगों की एक स्थिति उस समय पैदा होती है जब कोई असाध्य रोग से पीड़ित हो जाए या कोई ऐसे रोग से पीड़ित हो जाए जो साधनों के अभाव में न मिटाया जा सके। इसके अतिरिक्त अत्यधिक गरीबी दुःखात्मक संवेगों को जन्म देती है। रोगों की तरह गरीबी भी जीवन को दुखी बना देती है और इनसे दुखात्मक मानसिक अवस्था की स्थिति बनती है। यहाँ दुःख ही हमारे मन को सदैव पकड़े रखता है। अतः यह चिन्ताग्रस्त स्थिति मानसिक तनाव को उत्पन्न करती है।

(२) (क) (ii) व्यक्ति के जीवन में धन तथा व्यक्तियों से उसका संबंध दोनों ही अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं। पर किसी मित्र अथवा निकट के सहयोगी की मृत्यु जीवन को झकझोर देती है और यह एक अपूरणीय क्षति होती है। इसके अतिरिक्त धन की हानि भी गंभीर समस्याएँ पैदा कर देती हैं। ये दोनों ही व्यक्ति में दुःखात्मक संवेग उत्पन्न कर उसको कुंठित कर देते हैं। इनसे उत्पन्न मानसिक तनाव असहनीय होता है। इसी प्रकार सामाजिक प्रतिष्ठा की क्षति भी दुःखदायी होती है और तनाव का कारण बन जाती है। इसी तरह से इष्ट-वियोग प्रगति में बाधक बन जाते हैं।

(२) क(iii) जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कभी कभी ऐसे व्यक्तियों व घटनाओं से संयोग हो जाता है तथा साथ में रहने वाले व्यक्तियों के व्यवहार में ऐसा परिवर्तन हो जाता है जो अनिष्टकारी होता है, जिनके कारण दुःखात्मक संवेग उत्पन्न होते हैं और मानसिक तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। वैवाहिक अनबन, कौटुम्बिक मन-मुटाव, संस्थागत कलह, प्राकृतिक विपदाएँ, महामारी, दुर्घटनाएँ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आदि अनिष्टकारी होती हैं तथा व्यक्ति को चिन्ताग्रस्त बना देती है। ये अनिष्टकारी संयोग प्रगति के मार्ग को अवरुद्ध कर देते हैं। ऐसे अनिष्ट संयोगों का भय भी मानसिक तनाव उत्पन्न करता है।

(२) (ख) कुछ अशुभ भाव ऐसे होते हैं जो अल्प समय के लिए सुखदायी होते हैं, किन्तु वे व्यक्ति की रुचियों को इस प्रकार प्रभावित करते रहते हैं कि व्यक्ति की चिन्तनात्मक बुद्धि सदैव उनके जाल में ही फँसी रहती है, वे व्यक्ति में नई इच्छाओं को जन्म देते रहते हैं और बुद्धि उनके चंगुल में ही रहती है। उसका बहुत-सा समय व्यक्तिगत सुखों के चिन्तन में ही चला जाता है। ये भाव इसलिए अशुभ कहे गए हैं कि इनके कारण व्यक्ति में सामाजिक मूल्यों की चेतना पैदा नहीं होती और उसके स्वयं का मूल्यात्मक विकास अवरुद्ध ही रहता है। इसके अतिरिक्त इन्द्रिय-सुख व्यक्ति को अपने में ही इस तरह समेट लेते हैं कि उसकी 'दूसरे' के प्रति चेतना कम होती जाती है जो सामाजिकता को खतरा पैदा करती है। दो इन्द्रिय-सुखों में लिप्त व्यक्ति एक दूसरे की सहायता करना भी बोझ समझेंगे। अपने ही सुख में लीन व्यक्ति परम स्वार्थी होता जाता है और परार्थ उसके लिए असंभव या आकस्मिक रहता है।

(२) (ख) (i) कई मनुष्य विज्ञापन, रेडियो. टी. वी. सिनेमा, पत्र-पत्रिका आदि के माध्यमों से भौतिक सुख-साधन की वस्तुओं की तथा इन्द्रियों को रुचने वाली वस्तुओं की जानकारी पा कर उनके प्रति आकर्षित होने लगते हैं। उनमें वस्तुओं को प्राप्त करने की इच्छा पैदा होती है। सामान्यतया वस्तुओं की इच्छा और उनकी प्राप्ति में आर्थिक कठिनाइयों के कारण विलम्ब होता ही है और कभी कभी तो कई वस्तुएँ जीवन में नहीं मिल पाती हैं। यह स्थिति कुण्ठा पैदा करती है और मानसिक तनाव का कारण बनती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिन लोगों को आर्थिक सुलभता के कारण वस्तुएँ तुरन्त प्राप्त हो भी जाती हैं, तो वस्तुओं के प्रकारों में परिवर्तनशीलता की गति के अनुरूप वस्तुओं की प्राप्ति की गति नहीं हो पाती है, जिससे उन लोगों में भी कुण्ठा और उसके परिणामस्वरूप मानसिक तनाव पैदा होता है। कई बार जीवन-स्तर व्यक्तियों में होड़ का कारण बन जाता है। यह भी तनाव-पूर्ण स्थिति है।

अशुभ भाव से शुभ भाव की ओर :

जो कुछ कहा गया है उससे यह स्पष्ट है कि अशुभ भाव वैयक्तिक एवं सामाजिक दोनों दृष्टिकोण से घातक होते हैं और वे व्यक्ति में घोर मानसिक तनाव उत्पन्न करते हैं। (i) अशुभ भावों से उत्पन्न क्रियाएँ जो कानून, नैतिकता और न्याय के विरुद्ध होती हैं उन्हें पूर्णतया त्याग देना चाहिए। अतः इसके लिए अशुभ भावों को समाप्त किया जाना आवश्यक है जिससे इनका स्थान शुभ भाव तथा उनसे उत्पन्न क्रियाएँ ले सकें। (ii) कुछ घटनाएँ—जैसे इष्ट का वियोग, अनिष्ट का संयोग, जटिल रोगों का आक्रमण आदि—व्यक्ति के जीवन में ऐसी घटित होती हैं जो उसमें दुःखात्मक संवेगों को पैदा कर उसको चिन्ताग्रस्त बना देती हैं। वह भय, शोक, क्रोध, निराशा आदि संवेगों से आक्रान्त हो जाता है। चूँकि ये घटनाएँ व्यक्ति की इच्छा के विरुद्ध घटित होती हैं इसलिए व्यक्ति दुःखी और चिन्ताग्रस्त होने के साथ साथ व्यक्तित्व के विकास के लिए हानिकारक संवेगों से घिर जाता है, जो उसमें मानसिक तनाव उत्पन्न करते हैं। ऐसे व्यक्ति को यदि धैर्य, साहस आदि का प्रशिक्षण दिया जाए तो उसमें तनाव-सहनशीलता की वृद्धि हो सकती है। और वह शुभ संवगों को अपनाने में सफल हो सकता है। सामाजिक सहयोग, समस्या का उचित मूल्यांकन, ज्ञान-वृद्धि, परिस्थिति के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनुरूप जीवन को ढालना आदि उपायों से व्यक्ति अपने में शुभ संवेगों का संचार कर सकता है। (iii) कई व्यक्ति भौतिक सुख-सुविधा में जीने को ही श्रेय मानते हैं। अल्प सुखात्मक जीवन ही उन्हें आकर्षित करता रहता है। वे अपना समय और धन अपने लिए सुख-जनक वस्तुओं को जुटाने में ही व्यतीत करते हैं। ऐसे व्यक्तियों को समाज-कल्याण की क्रियाओं के लिए प्रेरित किया जा सकता है जिससे वे आवश्यक सुविधाओं को रखकर बाकी सब समाज को अर्पित कर दें। उनको समझाया जा सकता है कि सुविधाएँ शान्ति के लिए आवश्यक तो हैं पर वे शांति प्रदान नहीं कर सकती हैं। परार्थ का जीवन जीना ही शान्ति को निकट लाना है। इस तरह से अल्प सुखात्मक वस्तुओं में अनासक्त व्यक्ति शुभ भावों के विभिन्न आयामों में जीने की योजना बना सकता है।

शुभ भाव और मानसिक तनाव

व्यक्ति में शुभ भावों का उदय होने पर उसमें लोकोपकारी इच्छाओं का जन्म होता है और चिन्तनात्मक बुद्धि उनको साकार करने में तत्पर हो जाती है। इस तरह से व्यक्ति परार्थ की ओर अभिमुख हो जाता है।

(i) गुणियों के प्रति अनुराग ऐसे व्यक्ति के लिए स्वाभाविक होता है। वह व्यक्ति जिसकी जीवन-चर्या कानून, नैतिकता और न्याय के अनुरूप होती है, एक अर्थ में गुणी है। यहाँ पर ध्यान देना चाहिए कि व्यक्तिगत चर्या और सामाजिक कर्तव्य पालन दोनों मिलकर ही व्यक्ति में गुणों का कारण बनते हैं। कई व्यक्तियों के सामाजिक कर्तव्यों में ज्ञानात्मक और प्रशासनात्मक कार्य का प्राधान्य होता है और उनका ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में तथा लोक जीवन के सन्दर्भ में उपयोगी योगदान भी हो सकता है, किन्तु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यदि उनकी जीवन-चर्या कानून, नैतिकता और न्याय के अनुरूप नहीं है तो वे गुणी की कोटि में नहीं रखे जा सकते हैं। ठीक ही कहा है : व्याकरण, छंद, प्रशासन, न्याय-शास्त्र तथा आगमों के जानकार के लिए भी शील (चारित्र) ही उत्तम कहा गया है (९९)। जीव-दया, इन्द्रिय-संयम, सत्य, अचौर्य आदि शील के ही परिवार हैं (१००)। जो व्यक्ति ज्ञान प्राप्त करके भी विषयों में आसक्त होते हैं इसमें दोष ज्ञान का नहीं हैं, किन्तु वह दोष उन दुष्ट पुरुषों की मंद बुद्धि का ही है (९८)। ज्ञान और शील में कोई विरोध नहीं हैं (९७)। यदि शील नहीं है तो ज्ञान भी धीरे धीरे नष्ट हो जाता है (९७)। अतः शील (चारित्र) ही पूज्य है। यदि हम गहराई से विचार करें तो गुणियों के प्रति अनुराग विभिन्न स्तरों पर मानसिक तनाव पैदा करता है। गुणियों की खोज करना, गुणी का निश्चय करना, गुणी का कभी कभी दुर्गुणी में बदल जाने का भय होना, गुणी से आशाओं की पूर्ति की इच्छा करना, गुणी का गुणानुकरण करने का भाव आदि मानसिक तनाव पैदा करने वाली स्थितियाँ हैं। इनसे सामान्यतया नहीं बचा जा सकता है। किन्तु यह मानसिक तनाव दुष्टों के प्रति अनुराग से उत्पन्न मानसिक तनाव से भिन्न प्रकृति का है।

(ii) जीवन में नाना प्रकार के दुःख हैं। भूख-प्यास, शारीरिक रोग, मानसिक रोग, बुढ़ापा, अशिक्षा, गरीबी, बेरोजगारी तूफान, बाढ़, भूकम्प आदि बहुत से दुःख व्यक्ति को परेशान करते हैं। दहेज, बाल-विवाह, आणविक युद्ध का भय, अन्तर्राष्ट्रीय तनाव, भष्टाचार आदि सामाजिक बुराइयाँ व्यक्ति के दुःख का कारण बनती हैं। करुणा के संवेग से प्रेरित होकर दुःखियों के दुःख को दूर करने की इच्छा का उदय शुभ भाव है। चिन्तनात्मक बुद्धि इस दिशा में सक्रिय होकर मार्ग-दर्शन करती है। दुःखों के कारण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व उनको दूर करने के उपायों पर विचार करना धर्म-ध्यान कहा गया है (४०)। व्यक्ति कितना ही साधन सम्पन्न क्यों न हो, किन्तु वह व्यक्तिगत स्तर पर नाना प्रकार के दुःखों को दूर करने का बहुत ही सीमित प्रयास कर सकता है। यह प्रयास भी करुणा की तीव्रता और दुःखों के परिमाण के अनुपात में व्यक्तिगत साधनों के न होने से मानसिक तनाव का कारण बनता है। इसके परिणाम-स्वरूप व्यक्ति या तो निराश होकर प्रयास छोड़ देता है या फिर सामाजिक संस्थाओं या राज्य को माध्यम बनाने की ओर मुड़ता है। आखिर समाज में शुभ कार्य सामूहिक प्रयास से ही संभव बनते हैं। सामूहिक प्रयास व्यक्ति के लिए नये तनाव उत्पन्न कर देते हैं। साधनों का दुरुपयोग, धन का अपव्यय, लोकेषणा का जागरण, पद-लिप्सा, आपसी मन-मुटाव, पद का दुरुपयोग, व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति, गबन आदि अशुभ क्रियायें करुणा से प्रेरित व्यक्ति के लिए अत्यधिक मानसिक तनाव उत्पन्न करती हैं, क्योंकि सामूहिक प्रयासों में दुःखों को दूर करने की क्रियायें शिथिल होने के कारण उस व्यक्ति में कुण्ठा उत्पन्न होती है। यदि मान भी लिया जाए कि सामाजिक संस्थाएँ तथा राज्यों का कार्य उचित प्रकार से चल रहा है तो भी दुःखों का विस्तार और साधनों की सीमा को देखते हुए करुणा से प्रेरित व्यक्ति सदैव अपने उद्देश्य की प्राप्ति में पिछड़ा रहेगा और उसे उन लोगों पर आश्रित होना पड़ेगा जिनकी संवेदनशीलता उसके समान नहीं है। यह भी उसके लिए असहनीय होगा और वह मानसिक तनाव से मुक्त नहीं रहेगा। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि सभी सामाजिक दायित्वों में शुभ भावों से प्रेरित व्यक्ति की स्थिति एक या दूसरे कारण से तनाव पूर्ण रहती है।

(iii) अशुभ प्रवृत्ति के सुधारात्मक विरोध का भाव शुभ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भाव है। अशुभ भाव अशुभ इच्छाओं को जन्म देते है। अशुभ इच्छाएँ अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए चिन्तनात्मक बुद्धि का सहारा लेकर अशुभ प्रवृत्तियों को जन्म देती हैं जो कानून, नैतिकता और न्याय के विरुद्ध होती हैं। विभिन्न प्रकार के अशुभ भावों से विभिन्न प्रकार की अशुभ प्रवृत्तियां उत्पन्न होती हैं। जैसे दुष्टों के प्रति अनुराग से उनकी सहायता करना, दूसरों का अहंकारवश अपमान करना, दूसरों की ईर्ष्यावश हानि करना, काम-वासना में लिप्त होकर कुप्रवृत्तियों में फँसना आदि। कभी कभी शुभ इच्छाएँ अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भी अशुभ प्रवृत्तियों का सहारा ले लेती हैं। जैसे, परीक्षा में पास होने के उद्देश्य से नकल करने की अशुभ प्रवृत्ति का सहारा लेना, गरीबों को आर्थिक सहायता देने के लिए चोरी का सहारा लेना, साहित्यिक क्षेत्र में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार से जालसाजी का प्रयोग करना, धन कमाने के लिए पाण्डुलिपियों को तथा कलापूर्ण मूर्तियों को बेचना आदि। किसी भी प्रकार से उत्पन्न अशुभ प्रवृत्ति का सुधारात्मक विरोध शुभ भाव है। अशुभ प्रवृत्तियों का विरोध संघर्ष की स्थिति को जन्म देता है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि सामान्यतया अशुभ प्रवृत्ति में लीन व्यक्ति बुद्धिमान होता है। किन्तु उसकी बुद्धि मायाचारी, शोषण, हत्या, काम-तृप्ति, अहंकार पोषण, लोकेषणा, संग्रह, धन व पद का दुरुपयोग आदि में बहुत कुशाग्र होती है। उससे संघर्ष करना समाजोपयोगी होते हुए भी मानसिक तनाव को उत्पन्न करता है क्योंकि उन प्रवृत्तियों के विरोध करने वाले व्यक्ति को अपनी मानसिक शक्ति संघर्ष की ओर केन्द्रित करनी पड़ती है। यह घोर तनाव की स्थिति है। यह तनाव उस समय बढ़ जाता है जब समाज या राज्य उसमें सहयोग नहीं देता है। बहुत सी अशुभ प्रवृत्तियाँ कानूनी सबूत के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अभाव में समाज में चलती रहती है। इन प्रवृत्तियों से असहयोग भी शुभ भाव है, किन्तु इनके प्रति उदासीनता अशुभ भाव है। समाज का लाभ तो उनके दमन से ही होता है।

हमने ऊपर यह समझने का प्रयास किया है कि सामाजिक दृष्टिकोण से शुभ भाव सामाजिक विकास के लिए हितकारी होते हैं और व्यक्ति समाजोन्मुख होकर अपने में सामाजिक चेतना का उचित पोषण करता है जिससे वह अपनी संकुचित स्वार्थपूर्ण वृत्तियों पर विजय प्राप्त करने में सफल होता है। अब हम वैयक्तिक दृष्टिकोण से शुभ भाव के संबंध में विचार करेंगे।

(iv) वैयक्तिक दृष्टिकोण से इन्द्रिय संयम शुभ भाव है। इससे व्यक्ति में जहां एक ओर त्याग और अनासक्तता जैसे उच्च कोटि के गुणों का विकास होता है, वहां दूसरी ओर मन वचन और काय की अशुभ प्रवृत्तियों के स्थान पर शुभ प्रवृत्तियां विकसित होने लगती हैं। इससे स्पष्ट है कि यदि समाजोन्मुखता व्यक्ति को विकसित करती है तो वैयक्तिक विकास सामाजिक विकास के लिए हितकर होता है। इन्द्रिय-संयम से अभिप्राय है विभिन्न इन्द्रियों को (आंख, कान, नाक आदि को) उत्तेजनापूर्ण सामग्री से दूर रखना। उत्तेजनापूर्ण इन्द्रिय-सामग्री व्यक्ति को अल्पकालीन सुखों का आदी बना देती है जो उसके विकास में अड़चन पैदा करते हैं। बार-बार ऐसे सुखों को भोगने की भूख जब बढ़ती जाती है तो त्याग और अनासक्तता काल्पनिक हो जाते हैं। यहां यह समझना चाहिए कि सामान्यतया इन्द्रिय-संयम कठिन होता है, क्योंकि इन्द्रियों का संयम मानसिक तनाव उत्पन्न करता है। स्वाद का संयम तनाव है, रूप का संयम तनाव है, कोमल स्पर्श का संयम तनाव है, खुशबू और सुरीली आवाज का संयम तनाव है, यद्यपि रूप विज्ञान सुर विज्ञान, व्यंजन विज्ञान, गंध विज्ञान तथा स्पर्श विज्ञान इन्द्रियों के इर्द गिर्द

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ही विकसित होते हैं। इनका असंयमित प्रयोग अल्प सुखों के प्रति आकर्षण पैदा करता है और इनका संयम मानसिक तनाव उत्पन्न करता है।

जो ऊपर कहा गया है उससे कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं : (i) अशुभ भाव जब वे समाजोन्मुखी होते हैं, तो समाज को पतन की ओर ले जाते हैं और जब वे वैयक्तिक होते हैं, तो व्यक्ति के समुचित विकास को रोक देते हैं। दोनों ही अवस्थाओं में व्यक्ति असहनीय मानसिक तनाव अनुभव करता है। इस तरह से अशुभ भाव व्यक्ति व समाज दोनों के लिए अहितकर होते हैं। (ii) शुभ भाव जब वे समाजोन्मुखी होते हैं, तो समाज को उन्नति की ओर ले जाते हैं और जब वे वैयक्तिक होते हैं, तो व्यक्ति को विकासोन्मुख करते हैं। इस तरह से शुभ भाव समाज के लिए तो पूर्ण रूप से हितकारी होते हैं, किन्तु व्यक्ति के लिए आंशिक रूप से ही हितकारी होते हैं, क्योंकि व्यक्ति उनकी उपस्थिति में भी मानसिक तनाव अनुभव करता है, यद्यपि यह मानसिक तनाव अशुभ भाव से उत्पन्न मानसिक तनाव से भिन्न प्रकार का होता है। (iii) अशुभ भाव में लीन व्यक्ति की सामाजिक भूमिका निन्दनीय होती है, पर शुभ भाव में लीन व्यक्ति की सामाजिक भूमिका प्रशंसनीय होती है। अशुभ भाव में लीन व्यक्ति की वैयक्तिक भूमिका पशुवत् एवं तनावपूर्ण होती है, शुभ भाव में लीन व्यक्ति की वैयक्तिक भूमिका मानवीय होते हुए भी तनावपूर्ण रहती है। यह तनाव भी व्यक्ति के अपने मानसिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक ही होता है, किन्तु वैयक्तिक व सामाजिक मूल्यों में आस्था का भाव उसे इस तनाव में टिकाए रखता है। ऐसे व्यक्ति समाज के लिए तो बहुत ही उपयोगी होते हैं, पर उनका मानसिक स्वास्थ्य कुछ ऐसा हो जाता है कि वे अन्तर मन के रहस्यों को जानने में असमर्थ ही रहते हैं। यहाँ यह समझना चाहिए कि व्यक्ति के लिए समाज का उत्थान उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना उसके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लिए आन्तरिक जीवन का विकास।

यहां प्रश्न यह है : क्या यह संभव है कि व्यक्ति वैयक्तिक-सामाजिक मूल्यों में आस्थावान होकर मूल्यों का जीवन जीए, किन्तु किसी प्रकार का मानसिक तनाव उसे न हो ? क्या यह संभव है कि व्यक्ति अपने आन्तरिक जीवन में तनाव-मुक्त होकर आगे बढ़े और उसके माध्यम से समाज भी विकसित हो ? क्या व्यक्तिगत विकास तथा लोक-कल्याण करते हुए व्यक्ति तनाव-मुक्त रह सकता है ? अष्टपाहुड के अनुसार व्यक्ति दोनों आयामों में जीता हुआ भी तनाव-मुक्त रह सकता है (88)। तनाव मुक्तता=समभाव या मानसिक समता। यह कहा गया है कि मानसिक समता प्राप्त व्यक्ति के लिए काम-वासना से मुक्ति स्वाभाविक होती है, इन्द्रियों की आसक्ति जनित प्रवृत्ति से मुक्तता स्वाभाविक होती है तथा वस्तुओं के प्रति अनासक्ति भी स्वाभाविक होती है। ऐसे व्यक्ति के शरीर को खण्डित किया जा सकता है, किन्तु मानसिक समता को नहीं। कोई भी आन्तरिक व बाह्य परिस्थिति उसमें तनाव उत्पन्न नहीं कर सकती है। ऐसा व्यक्ति समाज में मूल्यों की स्थापना करते हुए तनाव-मुक्त रहता है। जिसे हम मानसिक समता या समभाव कहते हैं, वही शुद्ध भाव है (41), वही सम्यक् चारित्र है (9, 19), वही परमज्ञान है (20), वही मुक्त अवस्था है (17), वही निर्वाण-परमशान्ति है (89), वही आत्मा है (81), वही निर्विकल्प चारित्र है (76), वही परमात्म-अवस्था है (60), वही परम पद (उच्चतम-स्थिति) है (77), वही उत्तम सुख है (78), वही साधु अवस्था है (92), तथा वही सन्यास है (25, 26, 27)। समतावान व्यक्ति लोकोपकार के लिए असमानता, गरीबी, तथा अशिक्षा को मिटाने का संघर्ष करता हुआ निंदा और प्रशंसा से प्रभावित नहीं होता है (25, 85)। ऐसा करते हुए लोक में उसके शत्रु और मित्र दोनों ही बन जाते हैं, पर उसे एक से निराशा और दूसरे से उत्साह नहीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मिलता है (25, 88)। बाह्य स्थितियाँ उसे सुखी-दुःखी नहीं करती हैं (88)। उसे अपने कार्य में सफलता का लाभ मिले अथवा असफलता की हानि, तो भी वह एक से प्रेरित और दूसरे से विचलित नहीं होता है (25)। उसे कार्यों के लिए धन न मिले या खूब धन मिल जाए, तो भी वह अपमान या सम्मान भाव से खिन्न या प्रसन्न नहीं होता है (25), वह तो जीवन में चलता ही जाता है और सामाजिक अन्याय को मिटाने और व्यक्तियों को समता की ऊँचाइयों पर ले जाने की ओर उसका जीवन सतत गतिमान रहता है (24)।

समता की भूमिका, सम्यग्दर्शन (सम्यक्त्व) :

मनुष्य संसार में शुभ-अशुभ भावों में लीन रहता हुआ अपनी जीवन यात्रा समाप्त करता है। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि शुभ-अशुभ भावों में जीने वाले व्यक्ति के जीवन में एक बात समान होती है कि वह तनाव में जीता है, यद्यपि तनाव की प्रकृति में अन्तर होता है। शुभ-भावों से उत्पन्न शुभ प्रवृत्तियाँ समाज के लिए तो हितकर होती हैं, पर व्यक्ति के लिए तो तनाव-पूर्ण ही होती हैं। अशुभ भावों से उत्पन्न अशुभ प्रवृत्तियाँ समाज के लिए अहितकर होती हैं और व्यक्ति के लिए तनाव उत्पन्न करती हैं। कैसा भी तनाव हो, व्यक्ति के लिए सह्य नहीं होता है, यद्यपि अशुभ भावों के तनाव से परेशान होकर व्यक्ति शुभ भावों के तनाव में राहत अनुभव करता है (69), किन्तु यह राहत भी व्यक्ति के लिए कुछ समय पश्चात् सहनीय नहीं रह जाती है और वह तनाव-मुक्तता को ही चाहने लगता है। पूर्ण तनाव-मुक्तता में रुचि ही सम्यग्दर्शन है। जो निषेधात्मक दृष्टि से पूर्ण तनाव-मुक्ति है, वही स्वीकारात्मक दृष्टि से पूर्ण समता की प्राप्ति है। अतः पूर्ण समता की प्राप्ति में रुचि को सम्यग्दर्शन कहा जा सकता है। जो समता में रुचि है, वही आत्मा या अध्यात्म में रुचि है। अतः अध्यात्म में रुचि सम्यग्दर्शन है (75)। आत्मा में रुचि या श्रद्धा भी सम्यग्दर्शन है (7, 15, 81)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वह आत्मा रूप, रसादि रहित है, उसका ग्रहण केवल अनुभव से होता है, उसका स्वभाव ज्ञान व चेतना है (37, 38)। ठीक ही कहा है : यदि मनुष्य आत्मा (समता) को नहीं चाहता है और सकल पुण्यों (शुभ भावों) को करता है, तो भी वह पूर्ण तनाव-मुक्त नहीं होने से परम शान्ति प्राप्त नहीं कर पाता है (14, 42)। अतः योगी पुण्यों (शुभ भावों) तथा पापों (अशुभ भावों) को तनाव का कारण जानकर त्याग देना चाहता है और केवल आत्मा (समता) में ही रुचि या श्रद्धा रखता है (76)। इस तरह से जो हेय (त्यागने योग्य) और उपादेय (ग्रहण करने योग्य) को समझता है वह भी सम्यग्दृष्टि होता है(12)।

इस सम्यग्दर्शन (सम्यक्त्व) का जीवन में इतना महत्व समझा गया है कि इसे परम शान्ति की पहली सीढ़ी माना गया है (8, 52) यह कहा गया है कि सम्यग्दर्शन-रहित (तनाव-पूर्ण) मनुष्य हिलने डुलने वाला शव होता है। जैसे शव लोक में आदरणीय नहीं होता है, वैसे ही हिलने-डुलने वाला शव असाधारण मनुष्यों में आदरणीय नहीं होता है (50)। जैसे तारों में चन्द्रमा तथा समस्त हरिण-समूह में सिंह प्रधान होता है, वैसे ही साधु तथा गृहस्थ धर्म में सम्यग्दर्शन ही प्रधान होता है (51)। इससे मति शुद्ध होती है अर्थात् बुद्धि उचित कार्यों में अपने को लगाती है (80)। यहाँ यह समझना चाहिए कि जिसके हृदय में सम्यग्दर्शनरूपी जल का प्रवाह नित्य विद्यमान होता है, उसकी अशान्ति धीरे-धीरे नष्ट हो जाती है (2)। जैसे डोरे सहित सुई कभी नही खोती है, वैसे ही भव्य (सम्यग्दृष्टि) मनुष्य मानसिक तनाव का अवश्य नाश कर देता है (10)। सम्यग्दर्शन की मुख्यता को समझाने के लिए यह कहा गया है : यद्यपि ज्ञान मनुष्य के लिए सार होता है, किन्तु सम्यग्दर्शन की प्राप्ति मनुष्य के लिए अधिक सार होती है (8, 9)। इसलिए जिनका सम्यग्दर्शन दृढ़ है, वे ही मनुष्य हैं; वे ही धन्य हैं; वे ही वीर हैं, तथा वे ही पंडित हैं (90)। पूर्ण तनाव-मुक्तता में रुचि गुण है,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु तनाव-पूर्ण जीवन (मिथ्यात्व) में रुचि ही दोष है (91)। यहाँ यह कहना उचित ही है कि जो व्यक्ति सम्यग्दर्शन रूपी रत्न से वंचित है, वह शास्त्रों का अध्येता होता हुआ भी मानसिक तनाव में चक्कर काटता रहता है और दूसरों को भी इसी भटकाने वाले मार्ग पर ले जाता है (1, 2)।

समता के महत्व की समझ, सम्यक्ज्ञान :

यह कहा जा चुका है कि पूर्ण तनाव-मुक्तता में रुचि, समता में या आत्मा या अध्यात्म में रुचि सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन प्राप्त होने पर व्यक्ति का ज्ञान या उसकी चिन्तनात्मक बुद्धि एक नया आयाम ग्रहण कर लेती है, जिससे शुभ-अशुभ भावों से उत्पन्न प्रवृत्तियों को देखने की उसे एक नई दृष्टि मिलती है। इसे ही सम्यग्ज्ञान कहते हैं (4)। इस तरह से अध्यात्म का (समता का) ज्ञान सम्यक्ज्ञान होता है (75)। ऐसा व्यक्ति दुराचरण को नष्ट करता हुआ आगे बढ़ता है (5)। आध्यात्मिक ज्ञान से व्यक्ति स्व की तनाव-मुक्तता को महत्व देने लगता है और लोक कल्याण में प्रवृति चाहने लगता है (11)। वह व्यवहार नय और परमार्थ नय में समन्वय करके चलता है (13)। इस तरह से सम्यक्ज्ञान लोक कल्याण के लिए समता के महत्व की समझ है। जो इस ज्ञान से रहित है, वह उचित लाभ को प्राप्त नहीं कर सकता है (18)। समता की प्राप्ति का लक्ष्य सम्यक् ज्ञान के द्वारा ही देखा जा सकता है (20, 21)।

समता की प्राप्ति और उसकी प्रक्रिया, सम्यक्चारित्र :

मनुष्य इस संसार में वस्तुओं और व्यक्तियों के मध्य रहता है। वह वस्तुओं को प्राप्त करने की इच्छा और व्यक्तियों से आशाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति का प्रयास करता है। इस कारण वह मानसिक तनाव का अनुभव करता है। अज्ञान, मूर्च्छा और आत्म-विस्मरण के कारण वह इस तनाव में ही चक्कर काटता रहता है। जब गुरु-प्रसाद से उसमें आत्म-रुचि उत्पन्न होती है (84), तो इन्द्रियों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से उसका तादात्म्य समाप्त होता है और वह परम-आत्मावस्था की ओर उन्मुख होता है। इसलिए कहा गया है कि बहिरात्मा को छोड़ कर अन्तरात्मा को ग्रहण करके परम-आत्मा की ओर चलना चाहिए (59, 61)। इन्द्रियों से तादात्म्य बहिरात्म-अवस्था है (60)। इसमें अज्ञानी व्यक्ति देह और आत्मा को एक विचारता है और उसका मन बाह्य वस्तुओं में ही लगा रहता है (62)। शरीर से भिन्न आत्मा का विचार अन्तरात्मा है, इस अवस्था में तनाव मुक्ति में रुचि पैदा होती है (60)। पूर्णरूप से तनाव-मुक्त हो जाना या समता को प्राप्त कर लेना परम-आत्मा-अवस्था को प्राप्त कर लेना है (60)। अन्तरात्मा से परम-आत्मा तक की यात्रा, तनाव-मुक्ति में रुचि या समता में रुचि से तनाव-मुक्ति या समता को प्राप्त कर लेने की प्रक्रिया सम्यक् चारित्र है। अष्ट-पाहुड का कहना है कि व्यक्ति को यह प्रक्रिया उचित समय पर प्रारंभ कर देनी चाहिए (49)। ठीक ही कहा है: जब तक बुढ़ापा नहीं पकड़ता है, जब तक रोगरूपी अग्नि देहरूपी कुटिया को नहीं जलाती है, जब तक इन्द्रियों की शक्ति क्षीण नहीं होती है, तब तक आत्म-जागरूकता (तनाव-मुक्ति/समता) प्राप्त कर लेनी चाहिये (49)।

सम्यक् चारित्र की प्रक्रिया में विषयों के प्रति उदासीनता (85), अहंकार का त्याग (33, 57), हिंसा, आसक्ति, लालसा, लोभ तथा अन्य कषायों का नाश(16, 34, 63, 71, 78, 79,), शक्ति के अनुसार तप (77, 83), दया का जीवन में प्रवेश (24), इन्द्रिय रूपी सेना को छिन्न-भिन्न करना तथा मनरूपी बन्दर को प्रयत्न पूर्वक अशुभ प्रवृत्तियों से रोकना सम्मिलित है (44)। संक्षेप में, पर-द्रव्य से अनासक्ति (64, 87), तथा आत्मा का ध्यान (47, 70), समता की प्राप्ति में महत्वपूर्ण सोपान हैं। ठीक ही कहा गया है: जिस प्रकार दीपक घर के भीतर के कमरे में हवा की बाधा से रहित जलता है, उसी प्रकार रागरूपी हवा से रहित ध्यानरूपी दीपक भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जलता है (47)। निश्चय ही पर द्रव्य (आत्मा के अतिरिक्त द्रव्य) से विमुख जो (व्यक्ति) सम्यक् प्रकार से आचरण करके स्व द्रव्य का ध्यान करते हैं, वे परम-शान्ति (समता/तनाव-मुक्तता) को प्राप्त करते हैं (68)।

चयनिका के उपर्युक्त विषय से स्पष्ट है कि अष्टपाहुड ने जीवन के मूल्यात्मक पक्ष का सूक्ष्मता से अवलोकन किया है। इसी विशेषता से प्रभावित होकर यह चयन (अष्टपाहुड चयनिका) पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हर्ष का अनुभव हो रहा है। गाथाओं के हिन्दी अनुवाद को मूलानुगामी बनाने का प्रयास किया गया है। यह दृष्टि रही है कि अनुवाद पढने से ही शब्दों की विभक्तियां एवं उनके अर्थ समझ में आजाएँ। अनुवाद को प्रवाहमय बनाने की भी इच्छा रही है। कहां तक सफलता मिली है, इसको तो पाठक ही बता सकेंगे। अनुवाद के अतिरिक्त गाथाओं का व्याकरणिक विश्लेषण भी प्रस्तुत किया गया है। इस विश्लेषण में जिन संकेतों का प्रयोग किया गया है, उनको संकेत सूची में देखकर समझा जा सकता है। यह आशा की जाती है कि प्राकृत को व्यवस्थित रूप से सीखने में सहायता मिलेगी तथा व्याकरण के विभिन्न नियम सहज में ही सीखे जा सकेंगे यह सर्व विदित है कि किसी भी भाषा को सीखने के लिए व्याकरण का ज्ञान अत्यावश्यक है। प्रस्तुत गाथाएँ एवं उनके व्याकरणिक विश्लेषण से व्याकरण के साथ-साथ शब्दों के प्रयोग भी सीखने में मदद मिलेगी। शब्दों की व्याकरण और उनका अर्थपूर्ण प्रयोग दोनों ही भाषा सीखने के आधार होते हैं। अनुवाद एवं व्याकरणिक विश्लेषण जैसा भी बन पाया है पाठकों के समक्ष हैं। पाठकों के सुझाव मेरे लिए बहुत ही काम के होंगे।

आभार :

'अष्टपाहुड चयनिका' के लिए हमने अष्टपाहुड की तीन संस्करणों का उपयोग किया है। (क) पं. जयचन्दजी छाबड़ा द्वारा सम्पादित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'अष्टपाहुड' (ख) पं. पन्नालालजी साहित्याचार्य द्वारा सम्पादित 'अष्टपाहुड' जो कुन्दकुन्द भारती के अन्तर्गत प्रकाशित है और (ग) पं. मोतीलाल गौतमचन्द कोठारी द्वारा सम्पादित 'अष्टपाहुड'। इन तीनों विद्वानों के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। 'अष्टपाहुड चयनिका' के लिए (क) प्रति को आधारभूत माना है और उसके पाठों में (ख) और (ग) प्रति के आधार पर सुधार किया है। जिन पाठों में सुधार किया है उनकी सूची 'पाठ सुधार' के अंतर्गत दे दी गई है।

डा. सी. एन. माथुर (सह-प्रोफेसर, मनोविज्ञान-विभाग, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर) ने इसकी प्रस्तावना को पढने-सुनने के लिए समय दिया इसके लिए उनका आभारी हूँ। उनसे विचार-विमर्श उपयोगी रहा। डा. श्यामराव व्यास (सहायक प्रोफेसर दर्शन विभाग, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर), डा. उदयचन्द जैन तथा डा. हुकमचन्द जैन (जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर), डा. सुभाष कोठारी तथा श्री सुरेश सिसोदिया (आगम, अहिंसा-समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर) के सहयोग के लिए भी आभारी हूं।

मेरी धर्म-पत्नी श्रीमती कमलादेवी सोगाणी ने इस पुस्तक की गाथाओं का मूल ग्रंथ से सहर्ष मिलान किया है। इसके लिए आभार प्रकट करता हूँ।

इस पुस्तक को प्रकाशित करने के लिए प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर के सचिव श्री देवेन्द्रराज मेहता तथा संयुक्त सचिव एवं निदेशक महोपाध्याय श्री विनयसागरजी ने जो व्यवस्था की है, उसके लिए उनका हृदय से आभार प्रकट करता हूं।

प्रोफेसर, दर्शन विभाग
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय
उदयपुर (राजस्थान) 25.7.87

कमलचन्द सोगाणी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अष्टपाहुड-चयनिका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अष्टपाहुड-चयनिका

1 सम्मत्तरयण भट्ठा जाणंता बहुविहाइं सत्थाइं ।
आराहणाविरहिया भमंति तत्थेव तत्थेव ।।

2 सम्मत्तसलिलपवहो णिच्चं हियए पवट्टए जस्स ।
कम्मं वालुयवरणं बंधुच्चिय णासए तस्स ।।

3 जे दंसणेसु भट्ठा णाणे भट्ठा चरित्तभट्ठा य ।
एदे भट्ठविभट्ठा सेसं पि जणं विणासंति ।।

4 सम्मत्तादो णाणं णाणादो सव्वभावउवलद्धी ।
उवलद्धपयत्थे पुण सेयासेयं वियाणेदि ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अष्टपाहुड-चयनिका

1 (जो व्यक्ति) सम्यक्त्वरूपी रत्न (समताभाव में रुचि) से वंचित (हैं) (वे) (यदि) नाना प्रकार के (लौकिक-आध्यात्मिक) शास्त्रों को समझते हुए जीते (हैं), (तो भी) (उनके द्वारा) परम शान्ति (मानसिक समता) के मार्ग का परित्याग किया हुआ होने के कारण, (वे) वहाँ ही वहाँ ही (मानसिक तनाव में) चक्कर काटते हैं।

2 जिसके हृदय में सम्यक्त्वरूपी जल का प्रवाह नित्य विद्यमान होता है, उसका कर्म रूपी बंधन (मानसिक तनाव) (जो) बालू के ढेर (की तरह) (है) निश्चय ही नष्ट हो जाता है।

3 जो सम्यग्दर्शन (समता में रुचि) से वंचित (हैं), (सद्) ज्ञान से रहित (हैं), तथा चारित्र से गिरे हुए हैं, (ऐसे) ये (लोग) भटके हुए (तथा) पतित (होते हैं) (और) अन्य सब संसार को भी भटकाते हैं।

4 सम्यक्त्व से ज्ञान (सम्यक्) (होता है), (ऐसे) ज्ञान से सब पदार्थों का (मूल्यात्मक) ज्ञान (होता है), (और) (ऐसे) जाने हुए पदार्थ (समूह) के होने के कारण (वह) निश्चय ही शुभ और अशुभ को जान लेता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

5 सेयासेयविदण्हू उद्धुददुस्सील सीलवंतो वि ।
सीलफलेणब्भुदयं तत्तो पुण लहइ णिव्वाणं ।।

6 जिणवयणमोसहमिणं विसयसुहविरेयणं अमिदभूयं ।
जरमरणवाहिहरणं खयकरणं सव्वदुक्खाणं ।।

7 जीवादी सद्दहणं सम्मत्तं जिणवरेहिं पण्णत्तं ।
ववहारा णिच्छयदो अप्पा णं हवइ सम्मत्तं ।।

8 एवं जिणपण्णत्तं दंसणरयणं धरेह भावेण ।
सारं गुणरयणत्तय सोवाणं पढम मोक्खस्स ।।

9 णाणं णरस्स सारो सारो वि णरस्स होइ सम्मत्तं ।
सम्मत्ताओ चरणं चरणाओ होइ णिव्वाणं ।।

10 सुत्तम्मि जाणमाणो भवस्स भवणासणं च सो कुणदि ।
सूई जहा असुत्ता णासदि सुत्ते सहा णो वि ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

5 शुभ और अशुभ को जानने वाला ही (ऐसा व्यक्ति होता है) (जिसके द्वारा) दुराचरण नष्ट कर दिया गया (है) (तथा) (वह) चारित्रवान भी (हुआ है)। (वह) शील (चारित्र) के प्रभाव से (आध्यात्मिक) सुख-सम्पन्नता प्राप्त करता है, फिर उस कारण से परम शान्ति (समता) (प्राप्त करता है)।

6 यह जिन-वचनरूपी औषधी अमृत-सदृश (होती है), (तथा) विलास से (उत्पन्न अधम) सुख की विनाशक, जरा-मरणरूपी व्याधि को हरनेवाली (और) सभी दुःखों का नाश करने वाली (होती है)।

7 व्यवहार से जीव आदि (तत्वों) में श्रद्धा सम्यक्त्व (सम्यग्दर्शन) (है); निश्चय से आत्मा ही सम्यक्त्व होती है, (ऐसा) अरहंतों द्वारा कहा गया (है)।

8 अरहंतों द्वारा इस प्रकार (यह) कहा गया है (कि) सम्यग्दर्शन रूपी रत्न तीन रत्नों के तिगड्डे का सार (है), (और) मोक्ष (परम शान्ति/समता भाव) के लिए प्रथम सोपान है, (इसलिए) (तुम सब) भावपूर्वक (इसको) धारण करो।

9 (यद्यपि) ज्ञान मनुष्य के लिए सार है, तथापि सम्यक्त्व मनुष्य के लिए (अधिक) सार होता है। सम्यक्त्व से (सम्यक्) चारित्र (होता है) (और) (सम्यक्) चारित्र से परम शान्ति/समता भाव उत्पन्न होती/होता है।

10 जैसे डोरे रहित सूई खो जाती है (तथा) डोरे से युक्त (सूई) कभी नहीं (खोती है), (वैसे ही) भव्य (परम शान्ति/समता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

11 पुरिसो वि जो ससुत्तो ण विणासइ सो गओ वि संसारे ।
सच्चेयणपच्चक्खं णासदि तं सो अदिस्समाणो वि ।।

12 सुत्तत्थं जिणभणियं जीवाजीवादिबहुविहं अत्थं ।
हेयाहेयं च तहा जो जाणइ सो हु सद्दिट्ठी ।।

13 जं सुत्तं जिणउत्तं ववहारो तह या जाण परमत्थो ।
तं जाणिऊण जोई लहइ सुहं खवइ मलपुंजं ।।

14 अह पुण अप्पा णिच्छदि धम्माइं करेइ णिरवसेसाइं ।
तह वि ण पावदि सिद्धि संसारत्थो पुणो भणिदो ।।

15 एएण कारणेण य तं अप्पा सद्दहेह तिविहेण ।
जेण य लहेइ मोक्खं तं जाणिज्जइ पयत्तेण ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भाव को निश्चय ही प्राप्त करने वाले) के लिए (यह कहा गया है कि) वह सूत्र (आगम) को समझता हुआ संसार (मानसिक तनाव) का नाश निश्चय ही करता है।

11 संसार में ही स्थित वह पुरुष भी जो आगम (आध्यात्मिक ज्ञान) सहित है, बर्बाद नहीं होता है। (इसका कारण है कि) (आध्यात्मिक ज्ञान से) स्वचेतना का प्रत्यक्ष ज्ञान (हो जाता है)। (इसलिए) वह (दूसरों के द्वारा) न देखा जाता हुआ भी उस (तनाव/दुःख) को मिटा देता है।

12 जो (व्यक्ति) अरहंत द्वारा कथित सूत्र के अर्थ को, जीव-अजीव आदि नाना प्रकार के पदार्थ को, तथा हेय और उपादेय को भी जानता है, वह निश्चय ही सम्यग्दृष्टि (होता है)।

13 जो सूत्र अरहंत द्वारा कहा गया है, (जिसकी कथन पद्धति में) (अरहंत द्वारा) व्यवहार तथा परमार्थ (नय) (ग्रहण किया गया है) (उसे) (तुम) जानो; (क्योंकि) (ऐसे) उस (सूत्र) को जानकर योगी कर्म-मल समूह को नष्ट करता है (और) सुख प्राप्त करता है।

14 यदि (कोई) आत्मा को (तो) नहीं चाहता है, परन्तु (दूसरी) सकल धर्म-क्रियाओं को करता है, तो भी वह पूर्णता प्राप्त नहीं करता है, फिर (ऐसा व्यक्ति) संसार (मानसिक तनाव) में (ही) स्थित कहा गया है।

15 इस कारण से उस आत्मा पर ही तीन प्रकार से (मन-वचन-काय से) श्रद्धा करो। चूँकि जिससे परम शान्ति प्राप्त होती है, वह (ही) प्रयत्न पूर्वक समझा जाना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

16 अण्णाणं मिच्छत्तं वज्जहि णाणे विसुद्धसम्मत्ते ।
अह मोहं सारंभं परिहर धम्मे अहिंसाए ।।

17 पाऊण णाणसलिलं णिम्मलसुविसुद्धभावसंजुत्ता ।
हुंति सिवालयवासी तिहुवणचूडामणी सिद्धा ।।

18 णाणगुणेहिं विहीणा ण लहंते ते सुइच्छियं लाहं ।
इय णाउं गुणदोसं तं सण्णाणं वियाणेहि ।।

19 चारित्तसमारूढो अप्पा सुपरं ण ईहए णाणी ।
पावइ अइरेण सुहं अणोवमं जाण णिच्छयदो ।।

20 संजमसंजुत्तस्स य सुझाणजोयस्स मोक्खमग्गस्स ।
णाणेण लहदि लक्खं तम्हा णाणं च णायव्वं ।।

21 जह णवि लहदि हु लक्खं रहिओ कंडस्स वेज्झयविहीणो ।
तह णवि लक्खदि लक्खं अण्णाणी मोक्खमग्गस्स ।।

22 णाणं पुरिसस्स हवदि लहदि सुपुरिसो वि विणयसंजुत्तो ।
णाणेण लहदि लक्खं लक्खंतो मोक्खमग्गस्स ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

16 (तू) ज्ञान से होने पर अज्ञान को, निर्दोष सम्यक्त्व के होने पर मिथ्यात्व को, और अहिंसा-धर्म के होने पर हिंसा सहित मूर्च्छा को त्याग ।

17 (जो) (व्यक्ति) ज्ञानरूपी जल को पीकर निर्मल, शुद्ध भावों से युक्त (हैं), (वे) त्रिभुवन के आभूषण (होते हैं), (तथा) शिवालय में रहने वाले मुक्त (व्यक्ति) होते हैं ।

18 (जो) (सम्यक्) ज्ञान-गुण से रहित (हैं), वे भली प्रकार से (भी) चाहे हुए लाभ को प्राप्त नहीं करते हैं, इस प्रकार गुण-दोष को जानने के लिए (तू) उस सम्यग्ज्ञान को समझ ।

19 जो ज्ञानी चारित्र पर पूर्णतः आरूढ़ (है), (वह) (अपनी) आत्मा में श्रेष्ठ (भी) पर वस्तु को नहीं देखता है । (अतः) (वह) शीघ्र अनुपम सुख प्राप्त करता है, (तुम) निश्चय से जानो ।

20 संयम से जुड़े हुए तथा श्रेष्ठ ध्यान के लिए उपयुक्त (ऐसे) मोक्ष मार्ग (समता मार्ग) के लक्ष्य को (कोई भी) परम ज्ञान से प्राप्त करता है (कर सकता है), इसलिए परम ज्ञान निश्चय ही समझा जाना चाहिए ।

21 जैसे बींधने योग्य (निशाने) रहित बाण के द्वारा रथिक लक्ष्य को बिल्कुल ही नहीं देखता है वैसे ही ज्ञान रहित (व्यक्ति) (अज्ञान के द्वारा) मोक्ष मार्ग (समता-मार्ग) में लक्ष्य को (बिल्कुल ही) नहीं देखता है ।

22 ज्ञान आत्मा में होता है, विनय से जुड़ा हुआ सत् पुरुष ही (उसको) प्राप्त करता है । (वह) मोक्ष मार्ग (समता-मार्ग) के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

23 मइधणुहं जस्स थिरं सुदगुण बाणा सुअत्थि रयणत्तं ।
परमत्थबद्धलक्खो ण वि चुक्कदि मोक्खमग्गस्स ।।

24 धम्मो दयाविसुद्धो पव्वज्जा सव्वसंगपरिचत्ता ।
देवो ववगयमोहो उदययरो भव्वजीवाणं ।।

25 सत्तूमित्ते य समा पसंसणिंदाअलद्धिलद्धिसमा ।
तणकणए समभावा पव्वज्जा एरिसा भणिया ।।

26 उत्तममज्झिमगेहे दारिद्दे ईसरे णिरावेक्खा ।
सव्वत्थ गिहिदपिंडा पव्वज्जा एरिसा भणिया ।।

27 णिण्णेहा णिल्लोहा णिम्मोहा णिव्वियार णिक्कलुसा ।
णिब्भय णिरासभावा पव्वज्जा एरिसा भणिया ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लक्ष्य को देखता हुआ (उस लक्ष्य को) ज्ञान के द्वारा प्राप्त करता है ।

23 जिसके लिए स्थिर मति धनुष (है), श्रुत (ज्ञान) डोरी (है), तीन रत्नों का समूह श्रेष्ठ बाण (है) (तथा) परमार्थ (की प्राप्ति) का लक्ष्य दृढ़ (है), (वह) कभी मोक्ष के मार्ग (समता के मार्ग) से विचलित नहीं होता है ।

24 धर्म (चारित्र) (वह है) (जो) दया (सहानुभूति के भाव) से शुद्ध किया हुआ (है), सन्यास (वह है) (जो) समस्त आसक्ति से रहित (होता है), देव (वह है) (जिसके द्वारा) मूर्च्छा नष्ट की गई (है), (और) (जो) भव्य-जीवों (समता-भाव की प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों) का उत्थान करने वाला होता है ।

25 ऐसा कहा गया है (कि) निश्चय ही सन्यासी का जीवन शत्रु और मित्र में समान (होता है), प्रशंसा और निंदा में, लाभ और अलाभ में (भी) समान (होता है) (तथा) (उसके जीवन में) तृण और सुवर्ण में समभाव (होता है) ।

26 ऐसा कहा गया है (कि) सन्यासी का जीवन उत्तम और मध्यम गृह में, गरीबी (लिए हुए व्यक्ति) में तथा अमीर व्यक्ति में निरपेक्ष (होता है) (तथा) (उस जीवन में) (सन्यासी के द्वारा) प्रत्येक के स्थान में (निरपेक्ष भाव से) आहार स्वीकृत (होता है) ।

27 ऐसा कहा गया है (कि) सन्यासी का जीवन राग रहित, लोभ रहित, उद्विग्नता रहित, क्षोभ रहित, दोष रहित, (तथा) भय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

28 भावो हि पढमलिंगं ण दव्वलिंगं च जाण परमत्थं ।
भावो कारणभूदो गुणदोसाणं जिणा बिंति ।।

29 भावविसुद्धिणिमित्तं बाहिरगंथस्स कीरए चाओ ।
बाहिरचाओ विहलो अब्भंतरगंथजुत्तस्स ।।

30 जाणहि भावं पढमं किं ते लिंगेण भावरहिएण ।
पंथिय ! सिवपुरिपंथं जिणउवइट्ठं पयत्तेण ।।

31 रयणत्तये अलद्धे एवं भमिओ सि दीहसंसारे ।
इय जिणवरेहिं भणियं तं रयणत्तं समायरह ।।

32 भावविमुत्तो मुत्तो ण य मुत्तो बंधवाइमित्तेण ।
इय भाविऊण उज्झसु गंथं अब्भंतरं धीर ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रहित (होता है), (और) (उसमें) आशा रहित भाव (विद्यमान रहता है)।

28 (यह) (तुम) जानो (कि) भाव निस्संदेह प्रधान वेश (होता है), किन्तु (केवल) बाह्य वेश सचाई नहीं है। जितेन्द्रिय व्यक्ति कहते हैं (कि) भाव (ही) गुण-दोषों का कारण (सदैव) हुआ (है)।

29 भाव-शुद्धि के हेतु बाह्य परिग्रह का त्याग किया जाता है, आंतरिक परिग्रह (मूर्च्छा) से युक्त (व्यक्ति) का बाह्य त्याग निरर्थक है।

30 हे पथिक। (तुम) सर्व प्रथम भाव को समझो। भाव रहित वेश से तुम्हारे लिए क्या लाभ है? (इस प्रकार) जितेन्द्रियों द्वारा शिवपुरी का मार्ग (परम शान्ति का मार्ग) सावधानी पूर्वक प्रतिपादित (है)।

31 रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र) के प्राप्त न करने के कारण तूने इस प्रकार (विभिन्न प्रकार से) दीर्घकाल तक संसार (मानसिक तनाव) में चक्कर काटा। इसलिए तुम (सब) तीन रत्नों को धारण करो। इस प्रकार समतादर्शियों द्वारा कहा गया है।

32 (जिस व्यक्ति के द्वारा) (अशुद्ध) भाव त्यागा हुआ (है) (वह) मुक्त (है), परन्तु (जो) (केवल) बंधु आदि तथा मित्र से मुक्त (है) (वह) (मुक्त) नहीं (है)। (अतः) इस प्रकार विचार कर, हे धीर! (तू) आंतरिक परिग्रह (मूर्च्छा) को त्याग।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

33 देहादिसंगरहिओ माणकसाएहिं सयलपरिचत्तो ।
अप्पा अप्पम्मि रओ स भावलिंगी हवे साहू ।।

34 ममत्तिं परिवज्जामि णिम्ममत्तिमुवट्ठिदो ।
आलंबणं च मे आदा अवसेसाइं वोसरे ।।

35 भावेह भावसुद्धं अप्पा सुविसुद्धणिम्मलं चेव ।
लहु चउगइ चइऊण जइ इच्छह सासयं सुक्खं ।।

36 जो जीवो भावंतो जीवसहावं सुभावसंजुत्तो ।
सो जरमरणविणासं कुणइ फुडं लहइ णिव्वाणं ।।

37 जीवो जिणपण्णत्तो णाणसहाओ य चेयणासहिओ ।
सो जीवो णायव्वो कम्मक्खयकरणणिमित्तो ।।

38 अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेयणागुणमसद्दं ।
जाणमलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

33 जो देहादि की आसक्ति से मुक्त (है), (जिसके द्वारा) मान कषाय के कारण (उत्पन्न हुआ) सकल (अहंकार) त्यागा गया है, (ऐसा ही) व्यक्ति आत्मा में स्थित (होता है), (और इसलिए) वह (व्यक्ति) भावरूपी वेश को धारण करने वाला साधु होता है।

34 (मैं) ममत्व को छोड़ता हूं (और) (मैं) निर्ममत्व में स्थिर (हूँ)। मेरा आत्मा ही (मेरा) आलंबन है। (अतः) (मेरा आत्मा) अवशिष्ट (आलंबनों) का त्याग करता है।

35 यदि तुम (सब) महत्वहीन चारों गतियों को छोड़कर शाश्वत सुख की इच्छा करते हो, (तो) स्वरूप से शुद्ध, पूर्ण निष्कलंक, (तथा) (कर्म)-मल रहित आत्मा को (ही) तुम (सब) विचारो।

36 जो जीव आत्म-स्वभाव का चिन्तन करता हुआ श्रेष्ठ भावों से युक्त (होता है), वह बुढ़ापा और मृत्यु का नाश करता है (और) निश्चय ही परम शान्ति को प्राप्त करता है।

37 जितेन्द्रियों के द्वारा आत्मा ज्ञान-स्वभाव-रूप तथा चेतना-सहित कहा गया है, वह (ही) आत्मा कर्मों के क्षय को करने वाला हेतु समझा जाना चाहिए।

38 आत्मा रस रहित, रूप रहित, गंध-रहित, शब्द रहित तथा अदृश्यमान (है), (उसका) स्वभाव चेतना तथा ज्ञान (है), (उसका) ग्रहण बिना किसी चिन्ह के (केवल अनुभव से) (होता है) (और) (उसका) आकार अप्रतिपादित (है)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

39 पढिएण वि किं कीरइ किं वा सुणिएण भावरहिएण ।
भावो कारणभूदो सायारणयारभूदाणं ।।

40 भावं तिविहपयारं सुहासुहं सुद्धमेव णायव्वं ।
असुहं च अट्टरुद्दं सुहधम्मं जिणवरिंदेहिं ।।

41 सुद्धं सुद्धसहावं अप्पा अप्पम्मि तं च णायव्वं ।
इदि जिणवरेहिं भाणियं जं सेयं तं समायरह ।।

42 अह पुण अप्पा णिच्छदि पुण्णाइं करेदि णिरवसेसाइं ।
तह वि ण पावदि सिद्धि संसारत्थो पुणो भणिदो ।।

43 बाहिरसंगच्चाओ गिरिसरिदरिकंदराइ आवासो ।
सयलो झाणज्झयणो णिरत्थओ भावरहियाणं ।।

44 भंजसु इंदियसेणं भंजसु मणमक्कडं पयत्तेण ।
मा जणरंजणकरणं बाहिरवयवेस तं कुणसु ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

39 (हे मनुष्य)। भाव-रहित सुना हुआ होने से क्या लाभ प्राप्त किया जाता है, अथवा (भाव-रहित) पढ़े जाने से भी क्या लाभ (प्राप्त किया जाता है)। भाव (ही) गृहस्थ (एवं) साधु होने वालों का आधार बना हुआ है।

40 (जो) भाव (है) (उसके) तीन प्रकार के भेद (हैं)। (वह भाव) शुभ, अशुभ (तथा) शुद्ध ही समझा जाना चाहिए। अरहंतों द्वारा (कहा गया है कि) धर्म (ध्यान) शुभ (है) तथा आर्त और रौद्र (ध्यान) अशुभ (हैं)।

41 (जो) (आत्मा का) शुद्ध स्वभाव (है) (वह) शुद्ध (भाव) (है); वह (शुद्ध भाव) आत्मा के द्वारा आत्मा में ही अनुभव किया जाना चाहिए। (तीनों में) जो श्रेष्ठ (है) (तुम) उसका आचरण करो। इस प्रकार अरहंत द्वारा कहा गया है।

42 यदि (मनुष्य) आत्मा को नहीं चाहता है, किन्तु (वह) (केवल) सकल पुण्यों को (ही) करता है, तो भी (वह) परम शांति नहीं पाता है (और) (वह) संसार (अशान्ति) में ही स्थित कहा गया है।

43 भाव-रहित (व्यक्तियों) के लिए बाह्य परिग्रह का त्याग, पर्वत, नदी, गुफा और घाटी में रहना तथा सकल ध्यान और अध्ययन (ये सब) निरर्थक (हैं)।

44 इन्द्रियरूपी सेना को छिन्न-भिन्न करो, मनरूपी बंदर को प्रयत्न पूर्वक रोको, (तथा) जन-समुदाय को खुश करने के साधन, (केवल) बाह्य व्रतरूपी वेश को तुम धारण मत करो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

45 जह पत्थरो ण भिज्जइ परिट्ठिओ दीहकालमुदएण ।
तह साहू वि ण भिज्जइ उवसग्गपरीसहेहिंतो ।।

46 पावं हवइ असेसं पुण्णमसेसं च हवइ परिणामा ।
परिणामादो बंधो मुक्खो जिण सासणे दिट्ठो ।।

47 जह दीवो गब्भहरे मारुयबाहाविवज्जिओ जलइ ।
तह रायानिलरहिओ झाणपईवो वि पज्जलइ ।।

48 झायहि पंच वि गुरवे मंगलचउसरणलोयपरियरिए ।
णरसुरखेयरमहिए आराहणणायगे वीरे ।।

49 उत्थरइ जा ण जर ओ रोयग्गी जा ण डहइ देहउडिं ।
इंदियबलं ण वियलइ ताव तुमं कुणहि अप्पहियं ।।

50 जीवविमुक्को सवओ दंसणमुक्को य होइ चलसवओ ।
सवओ लोयअपुज्जो लोउत्तरयम्मि चलसवओ ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

45 जैसे दीर्घकाल तक जल में पड़ा हुआ पत्थर (जल के द्वारा) टुकड़े-टुकड़े नहीं किया जाता है, वैसे ही साधु भी उपसर्ग-परिषहों के कारण (उनके द्वारा) शिथिल नहीं किया जाता है ।

46 समस्त पुण्य परिणाम (भाव) से होता है, तथा समस्त पाप (भी) (परिणाम से) होता है । जिन शासन में बंध और मोक्ष परिणाम से ही प्रतिपादित हैं ।

47 जिस प्रकार दीपक घर के भीतर के कमरे में हवा की बाधा से रहित जलता है, उसी प्रकार रागरूपी हवा से रहित ध्यान रूपी दीपक भी जलता है ।

48 कल्याणकारी, चार (गतियों में) शरणरूप, लोक को विभूषित करने वाले, मनुष्यों, देवताओं तथा विद्याधरों[1] द्वारा पूजित, आराधना के लिए श्रेष्ठ (तथा) ऊर्ध्वगामी ऊर्जावाले (इन) पाँच गुरुओं अर्थात् आध्यात्मिक स्तंभों का ही (तुमको) ध्यान करना चाहिए ।

49 हे मनुष्य ! जब तक (तुझे) वृद्ध (अवस्था) नहीं पकड़ती है, जब तक रोगरूपी अग्नि देहरूपी कुटिया को नहीं जलाती है, (जब तक) इंद्रियों की शक्ति क्षीण नहीं होती है, तब तक तू आत्म-हित करले ।

50 जीव द्वारा छोड़ा हुआ (शरीर) शव (होता है), किन्तु सम्यग्दर्शन रहित (मनुष्य) (तो) हिलने-डुलने वाला शव होता है । शव लोक में आदरणीय नहीं (होता है), (और) हिलने-डुलने वाला शव असाधारण (मनुष्यों) में अर्थात् योगियों में (आदरणीय नहीं होता है)

---

1. विद्या के बल से आकाश में विचरण करने वाले मनुष्य ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

51 जह तारयाण चंदो मयराओ मयउलाण सव्वाण ।
अहिओ तह सम्मत्तो रिसिसावयदुविहधम्माणं ।।

52 इय णाउं गुणदोसं दंसणरयणं धरेह भावेण ।
सारं गुणरयणाणं सोवाणं पढम मोक्खस्स ।।

53 णाणी सिव परमेट्ठी सव्वण्हू विण्हु चउमुहो बुद्धो ।
अप्पो वि य परमप्पो कम्मविमुक्को य होइ फुडं ।।

54 जह सलिलेण ण लिप्पइ कमलिणिपत्तं सहावपयडीए ।
तह भावेण ण लिप्पइ कसायविसएहिं सप्पुरिसो ।।

55 ते धीरवीरपुरिसा खमदमखग्गेण विप्फुरंतेण ।
दुज्जयपबलबलुद्धरकसायभड णिज्जिया जेहिं ।।

56 मायावेल्लि असेसा मोहमहातरुवरम्मि आरूढा ।
विसयविसपुप्फफुल्लिय लुणंति मुणि णाणसत्थेहिं ।।

57 मोहमयगारवेहिं य मुक्का जे करुणभावसंजुत्ता ।
ते सव्वदुरियखंभं हणंति चारित्तखग्गेण ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

51 जैसे तारों में चन्द्रमा (तथा) समस्त हरिण समूह में सिंह प्रधान (होता है), वैसे ही ऋषि (साधु) और श्रावक (गृहस्थ) दो प्रकार के धर्मों में सम्यग्दर्शन (प्रधान होता है)।

52 इस प्रकार गुण-दोष को जानकर सम्यग्दर्शनरूपी रत्न को भाव पूर्वक धारण करो। (चूंकि) (यह)गुणरूपी रत्नों का सार (है), (और) परम शांति की पहली सीढ़ी (है)।

53 निस्सन्देह कर्मों से रहित आत्मा ही ज्ञानी, शिव, आध्यात्मिक गुरु, सर्वज्ञ, विष्णु, ब्रह्मा, बुद्ध और परमात्मा भी होता है।

54 जैसे कमलिनि का पत्ता स्वभाव और प्रकृति के कारण जल से मलिन नहीं किया जाता है, वैसे ही सत्पुरुष (सम्यग्दृष्टि मनुष्य) कषायों और विषयों के कारण कुभाव से दूषित नहीं किया जाता है।

55 वे पुरुष साहसी और वीर (हैं),(जिनके द्वारा) क्षमा तथा आत्म-संयमरूपी चमकती हुई तलवार से दुर्जय, प्रबल, बल में प्रचण्ड कषायरूपी योद्धा जीत लिए गए हैं।

56 मूर्च्छारूपी महा तथा गहन वृक्ष पर चढी हुई (तथा) विषयरूपी विष-फूलों से खिली हुई सम्पूर्ण कपटरूपी लताओं को मुनि ज्ञानरूपी शस्त्रों से पूर्णतः नष्ट कर देते हैं।

57 जो मूर्च्छा, अभिमान और लालसा से मुक्त (हैं), तथा करुणा भाव से संयुक्त (हैं), वे चारित्ररूपी तलवार से पूर्ण पापरूपी खम्भे को नष्ट कर देते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

58 जं जाणिऊण जोई जोअत्थो जोइऊण अणवरयं ।
अव्वाबाहमणंतं अणोवमं लहइ णिव्वाणं ।।

59 तिपयारो सो अप्पा परब्भितरबाहिरो हु हेऊण ।
तत्थ परो झाइज्जइ अंतोवायेण चयहि बहिरप्पा ।।

60 अक्खाणि बाहिरप्पा अंतरअप्पा हु अप्पसंकप्पो ।
कम्मकलंकविमुक्को परमप्पा भण्णए देवो ।।

61 आरुहवि अंतरप्पा बहिरप्पा छंडिऊण तिविहेण ।
झाइज्जइ परमप्पा उवइट्ठं जिणवरिंदेहिं ।।

62 बहिरत्थे फुरियमणो इंदियदारेण णियसरूवचुओ ।
णियदेहं अप्पाणं अज्झवसदि मूढदिट्ठी ओ ।।

63 जो देहे णिरवेक्खो णिद्दंदो णिम्ममो णिरारंभो ।
आदसहावे सुरओ जोई सो लहइ णिव्वाणं ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

58 जिस (आत्मा) को जानकर (और) लगातार अभिव्यक्त करके ध्यान में स्थित योगी निर्बाध, अनन्त, अनुपम परम शांति को प्राप्त करता है, (वह आत्मा तीन प्रकार की है)।

59 निश्चय ही (भिन्न भिन्न) कारणों से वह आत्मा तीन प्रकार का है—परम (आत्मा), आंतरिक (आत्मा) और बहिर (आत्मा)। (तुम) बहिरात्मा को छोड़ो, (चूंकि) उस (परम) अवस्था में आंतरिक (आत्मा) के साधन से परम (आत्मा) ध्याया जाता है।

60 (शरीररूपी) इन्द्रियाँ (ही) बहिरात्मा (है)। (शरीर से भिन्न) आत्मा का विचार ही अंतरात्मा (है), (तथा) कर्म-कलंक (तनाव) से मुक्त (जीव) परम-आत्मा देव (है)। (इस प्रकार यह) कहा जाता है।

61 तीन प्रकार (मन-वचन-काय) से बहिरात्मा को छोड़कर अंतरात्मा को ग्रहण कर परम आत्मा ध्याया जाता है। (यह) अरहंतों द्वारा कथित (है)।

62 इन्द्रियों के माध्यम से बाह्य पदार्थ में (जिसका) मन लगा हुआ है, (उसके द्वारा) (निश्चय ही) निज स्वरूप भूला हुआ (है)। (इस तरह से) खेद ! मूढदृष्टि वाला (व्यक्ति) निज देह (और) आत्मा को (एक) विचारता है।

63 जो देह से उदासीन है, (जो) (मानसिक) द्वन्द्व-रहित (है), ममतारहित (तथा) जीव-हिंसारहित (है), (जो) आत्म-स्वभाव में पूरी तरह संलग्न है, वह योगी परम शांति प्राप्त करता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

64 परदव्वरओ बज्झदि विरओ मुच्चेइ विविहकम्मेहिं ।
एसो जिणउवदेसो समासदो बंधमुक्खस्स ।।

65 परदव्वादो दुग्गइ सद्दव्वादो हु सग्गई होई ।
इय णाऊण सदव्वे कुणह रई विरय इयरम्मि ।।

66 आदसहावा अण्णं सच्चित्ताचित्तमिस्सियं हवइ ।
तं परदव्वं भणियं अवितत्थं सव्वदरसीहिं ।।

67 दुट्ठट्ठकम्मरहियं अणोवमं णाणविग्गहं णिच्चं ।
सुद्धं जिणेहिं कहियं अप्पाणं हवइ सद्दव्वं ।।

68 जे झायंति सदव्वं परदव्वपरंमुहा हु सुचरित्ता ।
ते जिणवराण मग्गे अणुलग्गा लहन्ति णिव्वाणं ।।

69 वर वयतवेहि सग्गो मा दुक्खं होउ णिरइ इयरेहिं ।
छायातवट्ठियाणं पडिवालंताण गुरुभेयं ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

64 पर द्रव्य में अनुरक्त (व्यक्ति) विभिन्न प्रकार के कर्मों (तनावों) के द्वारा बाँधा जाता (है), (पर द्रव्य से) अनासक्त (व्यक्ति) (विभिन्न प्रकार के मानसिक तनावों से) छुटकारा पाता है। संक्षेप से, बन्ध (अशान्ति) और मोक्ष (शान्ति) के विषय में यह जिन-उपदेश है।

65 पर द्रव्य के कारण दुर्गति (होती है), किन्तु स्व-द्रव्य के कारण सुगति होती है। इस तरह (यह) जान कर (तुम सब) स्व द्रव्य में अनुराग करो (तथा) शेष से विरति (करो)।

66 आत्म-स्वभाव से अन्य (जो) सचित्त-अचित्त (तथा) मिश्रित (द्रव्य) होता है, वह सर्वज्ञ द्वारा सच्चाईपूर्वक पर द्रव्य कहा गया है।

67 जिन द्वारा कथित (वह) आत्मा (जो) दुष्ट आठ कर्मों से रहित (है), अनुपम, नित्य, (और) शुद्ध (है), (तथा) (जिसका) ज्ञान ही शरीर (है) (वह) स्वद्रव्य होता है।

68 निश्चय ही पर द्रव्य से विमुख जो (व्यक्ति) सम्यक् प्रकार से आचरण करके स्व द्रव्य का ध्यान करते हैं, उन्होंने जितेन्द्रिय के पथ का अनुसरण किया है। (अतः) (वे) परमशांति प्राप्त करते हैं।

69 व्रतों और तपों के द्वारा जो स्वर्ग (प्राप्त किया जाता है), (वह) अधिक अच्छा (है), (जिससे) इतरों (अव्रतों और अतपों) के कारण नरक में (जाने का) दुख न होवे। (ठीक ही है) छाया और गरमी में ठहरे हुए प्रतीक्षा करते हुए (व्यक्तियों) में बड़ा भेद है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

70 जो इच्छइ णिस्सरिदुं संसारमहण्णवाउ रुद्दाओ ।
कम्मिंधणाण डहणं सो झायइ अप्पयं सुद्धं ।।

71 सव्वे कसाय मोत्तुं गारवमयरायदोसवामोहं ।
लोयववहारविरदो अप्पा झायइ झाणत्थो ।।

72 जं मया दिस्सदे रूवं तं ण जाणादि सव्वहा ।
जाणगं दिस्सदे णं तं तम्हा जंपेमि केण हं ।।

73 जो सुत्तो ववहारे सो जोई जग्गए सकज्जम्मि ।
जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणो कज्जे ।।

74 इय जाणिऊण जोई ववहारं चयइ सव्वहा सव्वं ।
झायइ परमप्पाणं जह भणियं जिणवरिंदेहिं ।।

75 तच्चरुई सम्मत्तं तच्चग्गहणं च हवइ सण्णाणं ।
चारित्तं परिहारो पयंपियं जिणवरिंदेहिं ।।

76 जं जाणिऊण जोई परिहरं कुणइ पुण्णपावाणं ।
तं चारित्तं भणियं अवियप्पं कम्मरहिएहिं ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

70 जो भीषण संसाररूपी महासागर से (बाहर) निकलने की चाह रखता है, वह कर्मोरूपी ईंधन को जलाने वाली शुद्ध आत्मा का ध्यान करता है ।

71 ध्यान में स्थित (व्यक्ति) लोक में (हिंसात्मक) व्यवहार से रुका हुआ (रहता है), (तथा) लालसा, अहंकार, राग-द्वेष, व्याकुलता और सभी कषायों को छोड़ कर आत्मा को ध्याता है ।

72 जो रूप मेरे द्वारा देखा जाता है, वह बिल्कुल नहीं जानता है, (और) (जो) जानने वाला है वह (मेरे द्वारा) देखा नहीं जाता है, इसलिए मैं किसके (साथ) बोलूँ ।

73 जो योगी बाह्य लोकाचार (विषमता) में सोया हुआ (है) वह आत्मा (तनाव-मुक्तता) के काज में जागता है । जो बाह्य लोकाचार (विषमता) में जागता है, वह आत्मा (तनाव-मुक्तता) के काज में सोया हुआ है ।

74 इस तरह जानकर योगी पूर्णतः सब बाह्य लोकाचार को छोड़ता है, (और) जिस तरह जितेन्द्रियों (अरहंतों) द्वारा कहा गया है, (उसी तरह) परम आत्मा का ध्यान करता है ।

75 अध्यात्म (समता/तनाव-मुक्तता) में रुचि सम्यक्त्व (है), और अध्यात्म (मानसिक समता) का ज्ञान सम्यक् ज्ञान होता है, त्याग (अनासक्ति) चारित्र (है), जितेन्द्रियों (अरहंतों) द्वारा (यह) कहा गया है ।

76 जिस (शुद्ध आत्मा) को जानकर योगी पुण्य और पाप का परित्याग करता है, कर्म-रहित (व्यक्तियों) द्वारा वह निर्विकल्प (आत्मानुभव-रूप) चारित्र कहा गया है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

77 जो रयणत्तयजुत्तो कुणइ तवं संजदो ससत्तीए ।
सो पावइ परमपयं झायंतो अप्पयं सुद्धं ।।

78 मयमायकोहरहिओ लोहेण विवज्जिओ य जो जीवो ।
णिम्मलसहावजुत्तो सो पावइ उत्तमं सोक्खं ।।

79 परमप्पय झायंतो जोई मुच्चेइ मलदलोहेण ।
णादियदि णवं कम्मं णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं ।।

80 होऊण दिढचरित्तो दिढसम्मत्तेण भावियमईओ ।
झायंतो अप्पाणं परमपयं पावए जोई ।।

81 चरणं हवइ सधम्मो धम्मो सो हवइ अप्पसमभावो ।
सो रागरोसरहिओ जीवस्स अणण्णापरिणामो ।।

82 जह फलिहमणि विसुद्धो परदव्वजुदो हवेइ अण्णं सो ।
तह रागादिविजुत्तो जीवो हवदि हु अणण्णविहो ।।

83 तवरहियं जं णाणं णाणविजुत्तो तवो वि अकयत्थो ।
तम्हा णाणतवेणं संजुत्तो लहइ णिव्वाणं ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

77 रत्नों के तिगड्डे से युक्त जो संयत योगी अपनी शक्ति के (अनुरूप) तप करता है, वह शुद्ध आत्मा को ध्याता हुआ उच्चतम स्थिति को प्राप्त करता है।

78 लोभ से रहित तथा अहंकार, कपट, (और) क्रोध से रहित जो जीव निर्मल स्वभाव से युक्त (होता है), वह उत्तम सुख को पाता है।

79 परम आत्मा को ध्याता हुआ योगी अपवित्रता को उत्पन्न करने वाले लोभ से मुक्त हो जाता है, (तथा) नवीन कर्मों को ग्रहण नहीं करता है। (ऐसा) अरहंतों द्वारा कहा गया है।

80 दृढ़ सम्यक्त्व से मति विशुद्ध (होती है) (तथा) चारित्र दृढ़ (होता है)। (ऐसा) प्राप्त करके योगी आत्मा को ध्याता हुआ परम पद को प्राप्त करता है।

81 चारित्र आत्मा का धर्म होता है, वह धर्म आत्मा की समता होता है (और) वह (आत्मा की समता) हर्ष और क्रोध रहित जीव का अनुपम परिणाम है।

82 जैसे स्फटिक मणि शुद्ध होती है, (किन्तु) (जब वह) पर द्रव्य से संयुक्त (होती है) (तो) वह अन्य (नाम) को प्राप्त करती है, वैसे ही जीव रागादि (दोषों) से रहित (होता है), किन्तु (जब वह) (पर द्रव्य से संयुक्त होता है तो) भिन्न भिन्न प्रकार का हो जाता है।

83 चूंकि तपरहित ज्ञान तथा ज्ञान-रहित तप (दोनों ही) असफल (होते हैं), इसलिए (जो व्यक्ति) ज्ञान (और) तप से संयुक्त (होता है) (वह ही) परम शान्ति को प्राप्त करता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

84 आहारासणणिद्दाजयं च काऊण जिणवरमएण ।
झायव्वो णियअप्पा णाऊणं गुरुपसाएण ।।

85 ताम ण णज्जइ अप्पा विसएसु णरो पवट्टए जाम ।
विसए विरत्तचित्तो जोई जाणेइ अप्पाणं ।।

86 परमाणुपमाणं वा परदव्वे रदि हवेदि मोहादो ।
सो मूढो अण्णाणी आदसहावस्स विवरीओ ।।

87 जेण रागो परे दव्वे संसारस्स हि कारणं ।
तेणावि जोइणो णिच्चं कुज्जा अप्पे सभावणा ।।

88 णिंदाए य पसंसाए दुक्खे य सुहएसु य ।
सत्तूणं चेव बंधूणं चारित्तं समभावदो ।।

89 णिच्छयणयस्स एवं अप्पा अप्पम्मि अप्पणे सुरदो ।
सो होदि हु सुचरित्तो जोई सो लहइ णिव्वाणं ।।

90 ते धण्णा सुकयत्था ते सूरा ते वि पंडिया मणुया ।
सम्मत्तं सिद्धियरं सिविणे वि ण मइलियं जेहिं ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

84 जितेन्द्रियों के मत से तथा गुरु-प्रसाद से (शुद्ध आत्मा को) जानकर, आहार, आसन और निद्रा को जीत कर, निज आत्मा ध्याया जाना चाहिए।

85 जब तक मनुष्य विषयों में प्रवृत्ति करता है, तब तक (वह) आत्मा को नहीं जानता है, (जिस योगी का) चित्त विषय से उदासीन है, (वह) योगी (ही) आत्मा को जानता है।

86 मूर्च्छा के कारण (जिसकी) पर द्रव्य में परमाणु की माप के समान (भी) आसक्ति होती है, वह मूढ, अज्ञानी (व्यक्ति) आत्मा के (शुद्ध) स्वभाव का विरोधी (होता है)।

87 चूँकि पर द्रव्य में राग निश्चय ही संसार का कारण है, इसलिए ही योगी आत्मा के विषय में श्रेष्ठ चिन्तनों को सदैव धारण करें।

88 निंदा और प्रशंसा में, दुखों और सुखों में तथा शत्रुओं और मित्रों में समभाव (रखने) से (ही) चारित्र होता है।

89 निश्चयनय के (अनुसार) बिल्कुल ऐसा ही है (कि) आत्मा आत्मा में आत्मा के लिए पूरी तरह से संलग्न (होता है)। वह (स्थिति) ही श्रेष्ठ चारित्र होती है, (और ऐसा) वह योगी (ही) परम शांति को प्राप्त करता है।

90 कल्याण करने वाला सम्यक्त्व जिनके द्वारा स्वप्न में भी मलिन नहीं किया गया (है), वे ही मनुष्य (हैं), वे (ही) धन्य (तथा) पूरी तरह सफल (हैं), वे (ही) वीर (और) पंडित (हैं)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

91 सम्म गुण मिच्छ दोसो मणेण परिभाविऊण तं कुणसु ।
जं ते मणस्स रुच्चइ किं बहुणा पलविएणं तु ।।

92 वेरग्गपरो साहू परदव्वपरम्मुहो य जो होदि ।
संसारसुहविरत्तो सगसुद्धसुहेसु अणुरत्तो ।।

93 गुणगणविहूसियंगो हेयोपादेयणिच्छिओ साहू ।
झाणज्झयणे सुरदो सो पावइ उत्तमं ठाणं ।।

94 अरुहा सिद्धायरिया उज्झाया साहु पंच परमेट्ठी ।
ते वि हु चिट्ठहिं आदे तम्हा आदा हु मे सरणं ।।

95 सम्मत्तं सण्णाणं सच्चारित्तं हि सत्तवं चेव ।
चउरो चिट्ठहिं आदे तम्हा आदा हु मे सरणं ।।

96 धम्मेण होइ लिंगं ण लिंगमत्तेण धम्मसंपत्ती ।
जाणेहि भावधम्मं किं ते लिंगेण कायव्वो ।।

97 सीलस्स य णाणस्स य णत्थि विरोहो बुधेहिं णिद्दिट्ठो ।
णवरि य सीलेण विणा विसया णाणं विणासंति ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

91 सम्यक्त्व गुण (है), मिथ्यात्व दोष (है)। मन से विचार करके जो तुम्हारे मन को रुचे, वह (तुम) ग्रहण करो। बहुत अनर्थक कहने से भी क्या लाभ (है)?

92 जो साधु वैराग्य में लीन होता है, पर द्रव्य से विमुख (होता है), और संसार-सुखों से विरक्त (होता है), वह (ही) आत्मा के शुद्ध सुखों में अनुरक्त (होता है)।

93 (जिसकी) बुद्धि गुणों के समूह द्वारा अलंकृत (होती है), (जिसके द्वारा) हेय और उपादेय निश्चित कर लिए गए (हैं), (ऐसा) (जो) साधु ध्यान और अध्ययन में पूरी तरह लीन (होता है), वह उत्तम स्थिति प्राप्त करता है।

94 अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु पंच परमेष्ठि (हैं)। चूंकि वे निश्चय ही आत्मा में स्थित (होते हैं), इसलिए आत्मा ही मेरे लिए शरण है।

95 निश्चय ही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र तथा सम्यक् तप—ये चारों आत्मा में स्थित हैं, इसलिये आत्मा ही मेरे लिए शरण है।

96 धर्म (समभाव) के कारण (ही) वेश होता है, वेश मात्र से धर्म (समभाव) की प्राप्ति नहीं (होती है), (इसलिए) भाव-धर्म को समझो। तुम्हारे लिए वेश से क्या किया जायगा?

97 विद्वानों (जागृत व्यक्तियों) द्वारा शील (चरित्र) और ज्ञान में विरोध नहीं बतलाया गया है। किन्तु (यह कहा गया कि) केवल शील (चरित्र) के बिना विषय ज्ञान को नष्ट कर देते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

98 णाणस्स णात्थि दोसो कापुरिसाणं वि मंदबुद्धीणं ।
जे णाणगव्विदा होऊणं विसएसु रज्जंति ।।

99 वायरणछंदवइसेसियववहारणायसत्थेसु ।
वेदेऊण सुदेसु य तेव सुयं उत्तमं सीलं ।।

100 जीवदया दम सच्चं अचोरियं बंभचेरसंतोसे ।
सम्मद्दंसण णाणं तओ य सीलस्स परिवारो ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

98 जो (व्यक्ति) ज्ञान से गावत होकर विषयों में आसक्त होत है, (इसमें) ज्ञान का दोष नहीं है, (वह दोष) (उन) दुष्ट पुरुषों की अकर्मण्य बुद्धि का ही है।

99 व्याकरण, छंद, वैशेषिक, न्याय-प्रशासन (तथा) न्याय-शास्त्रों को जानकर और आगमों को (जानकर) (भी) तुम्हारे लिए शील (चरित्र) ही उत्तम कहा गया (है)।

100 जीव-दया, इंद्रिय-संयम, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, संतोष, सम्यक् दर्शन, ज्ञान और तप—(ये सभी) शील के (ही) परिवार हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संकेत-सूची

(अ)	= अव्यय (इसका अर्थ = लगाकर लिखा गया हैं)	भूक	= भूतकालिक कृदन्त
		व	= वर्तमानकाल
		वक	= वर्तमान कृदन्त
अक	= अकर्मक क्रिया	वि	= विशेषण
अनि	= अनियमित	विधि	= विधि
आज्ञा	= आज्ञा	विधिकृ	= विधि कृदन्त
कर्म	= कर्मवाच्य	स	= सर्वनाम
		संकृ	= सम्बन्ध भूत कृदन्त
(क्रिविअ)	= क्रिया विशेषण अव्यय (इसका = अर्थ लगाकर लिखा गया है)	सक	= सकर्मक क्रिया
		सवि	= सर्वनाम विशेषण
		स्त्री	= स्त्रीलिंग
		हेकृ	= हेत्वर्थ कृदन्त
		( )	= इस प्रकार के कोष्टक में मूल शब्द रक्खा गया है।
तुवि	= तुलनात्मक विशेषण		
पु	= पुल्लिग		
प्रे	= प्रेरणार्थक क्रिया	[( )+( )+( ).....] इस प्रकार के कोष्टक के अन्दर + चिह्न किन्हीं शब्दों में संधि का द्योतक है। यहां अन्दर के कोष्टकों में गाथा के शब्द ही रख दिये गये हैं।	
भकृ	= भविष्य कृदन्त		
भवि	= भविष्यत्काल		
भाव	= भाववाच्य		
भू	= भूतकाल		

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

[( )—( )—( ).....] इस प्रकार के कोष्टक के अन्दर '-' चिह्न समास का द्योतक हैं।

• जहां कोष्टक के बाहक केवल संख्या (जैसे 1/1, 2/1.... आदि) ही लिखी है, वहां उस कोष्टर के अन्दर का शब्द **'संज्ञा'** है।

• जहां कर्मवाच्य, कृदन्त आदि प्राकृत के नियमानुसार नहीं बने हैं, वहां कोष्टक के बाहर **'अनि'** भी लिखा गया हैं।

1/1 अक या सक = उत्तम पुरुष/ एक वचन

1/2 अक या सक = उत्तम पुरुष/ बहुवचन

2/1 अक या सक = मध्यम पुरुष/ एक वचन

2/2 अक या सक = मध्यम पुरुष/ बहुवचन

3/1 अक या सक = अन्य पुरुष/ एक वचन

3/2 अक या सक = अन्य पुरुष/ बहुवचन

1/1	=	प्रथमा/एकवचन
1/2	=	प्रथमा/बहुवचन
2/1	=	द्वितीया/एकवचन
2/2	=	द्वितीया/बहुवचन
3/1	=	तृतीया/एकवचन
3/2	=	तृतीया/बहुवचन
4/1	=	चतुर्थी/एकवचन
4/2	=	चतुर्थी/बहुवचन
5/1	=	पंचमी/एकवचन
5/2	=	पंचमी/बहुवचन
6/1	=	षष्ठी/एकवचन
6/2	=	षष्ठी/बहुवचन
7/1	=	सप्तमी/एकवचन
7/2	=	सप्तमी/बहुवचन
8/1	=	संबोधन/एकवचन
8/2	=	संबोधन/बहुवचन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

1 **सम्मत्तरयणभट्ठा** [(सम्मत्त)–(रयण)–(भट्ठ) 1/2 वि]। **जाणंता** (जाण) वकृ 1/2। **बहुविहाइं** (बहुविह) 2/2 वि.। **सत्थाइं** (सत्थ) 2/2। **आराहणाविरहिया** [(आराहणा)–(विरह) भूक 5/1]। **भमंति**[1] (भम) व 3/2 सक। **तत्थेव** [(तत्थ) + (एव)] तत्थ[2] (त) 7/1 सवि एव (अ) = ही

1. 'गमन' अर्थ वाली क्रियाओं के योग में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है।
2. कभी कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-135)

2 **सम्मत्तसलिलपवहो**[(सम्मत्त)–(सलिल)–(पवह) 1/1]। **णिच्चं** (अ) = नित्य। **हियए** (हियअ) 7/1। **पवट्टए** (पवट्ट) व 3/1 अक। **जस्स** (ज) 6/1 स। **कम्मं** (कम्म) 1/1। **वालुयवरणं** [(वालुय)–(वरण) 1/1]। **बंधु** (बंध) 1/1 अपभ्रंश। **च्चिय** (अ) = निश्चय ही। **णासए** (णास) व 3/1 अक। **तस्स** (त) 6/1 स।

3 **जे** (ज) 1/2 सवि। **दंसणेसु**[5] (दंसण) 7/2। **भट्ठा** (भट्ठ) 1/2 वि। **णाणे**[3] (णाण) 7/1। **चरित्तभट्ठा** [(चरित्त)–(भट्ठ) 1/2 वि]। **य** (अ) = तथा। **एदे** (एद) 1/2 सवि। **भट्ठविभट्ठा** [(भट्ठ) वि–(विभट्ठ) 1/2 वि]। **सेसं** (सेस) 2/1 वि। **पि** (अ) = भी। **जणं** (जण) 2/1। **विणासंति** (विणास) व 3/2 सक।

3. कभी कभी पंचमी विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-136)
'दंसण' सम्मान सूचक होने से यहाँ इसमें बहुवचन का प्रयोग है।

4 **सम्मत्तादो** (सम्मत्त)5/1। **णाणं**(णाण)1/1। **णाणादो** (णाण) 5/1। **सव्वभावउवलद्धी** [(सव्व)–(भाव)–(उवलद्धि) 1/1]। **उवलद्धपयत्थे**[4]

4. कभी कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-135)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

[(उवलद्ध)भूकृ अनि–(पयत्थ)7/1]। **पुण** (अ)=निश्चय ही। **सेयासेयं** [(सेय)+(असेयं)] [(सेय)–(असेय) 2/1]। **वियाणेदि** (वियाण) व 3/1 सक।

5 **सेयासेयविदण्हू** [(सेय)+(असेय)+(विदण्हू)] [(सेय)–(असेय)–(विदण्हु)वि 1/1]। **उद्धुवदुस्सील** [(उद्धुद) भूकृ अनि–(दुस्सील)[1] मूल शब्द 1/1]। **सीलवंतो** (सीलवंत) 1/1 वि। **वि** (अ)=भी। **सीलफलेणब्भुदयं** [(सील)+(फलेण)+(अब्भुदयं)] [(सील)–(फल) 3/1] अब्भुदयं (अब्भुदय) 2/1। **तत्तो** (अ)=उस कारण से। **पुण** (अ)=फिर। **लहइ** (लह) व 3/1 सक। **णिव्वाणं** (णिव्वाण) 2/1।

1. पद्य में किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द काम में लाया जाता है। (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ, 517)

6 **जिणवयणमोसहमिणं** [(जिण)+(वयणं)+(ओसहं)+(इणं)] [(जिण)–(वयण) 1/1] ओसहं (ओसह) 1/1 इणं (इम) 1/1 सवि। **विसयसुहविरेयणं** [(विसय)–(सुह)–(विरेयण) 1/1 वि]। **अमिद्भूयं** [(अमिद)–(भूय) भूकृ 1/1 अनि]। **जरमरणवाहिहरणं** [(जर)–(मरण)–(वाहि)–(हरण) 1/1 वि] **खयकरणं** [(खय)–(करण) 1/1 वि]। **सव्वदुक्खाणं** [(सव्व) वि–(दुक्ख) 6/2]।

7 **जीवादी**[2] [(जीव+(आदी)] [(जीव)–(आदि) 2/2]। **सद्दहणं**[2] (सद्दहण) 1/1। **सम्मत्तं** (सम्मत्त)1/1। **जिणवरेहिं** (जिणवर) 3/2। **पण्णत्तं** (पण्णत्त) भूकृ 1/1 अनि। **ववहारा** (ववहार) 5/1। **णिच्छयदो** (णिच्छय) पंचमी अर्थक 'दो' प्रत्यय। **अप्पा** (अप्प) 1/1। **णं** (अ)=ही। **हवइ** (हव) व 3/1 अक। **सम्मत्तं** (सम्मत्त) 1/1।

2. 'श्रद्धा' के योग में द्वितीया का प्रयोग (अथवा) कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

8 **एवं** (अ) = इस प्रकार । **जिणपण्णत्तं** [(जिण)-(पण्णत्त) भूक 1/1 अनि] । **दंसणरयणं** [(दंसण)-(रयण) 1/1] । **धरेह** (धर) आज्ञा 2/2 सक । **भावेण** (क्रिविअ) = भावपूर्वक । **सारं** (सार) 1/1 । **गुणरयणत्तय** [(गुण)[2]-(रयण)-(त्तय) मूलशब्द 6/1] । **सोवाणं** (सोवाण) 1/1 । **पढम**[1] (पढम) 1/1 वि । **मोक्खस्स** (मोक्ख) 4/1 ।

1. अनुस्वार का लोप विकल्प से होता है । (हेम प्राकृत व्याकरण : 1-29)
2. गुण = तीन गुणों से व्युत्पन्न तीन की संख्या । 3. देखें गाथा सं. 5

9 **णाणं** (णाण) 1/1 । **णरस्स** (णर) 4/1 । **सारो** (सार) 1/1 । **वि** (अ) = तथापि । **होइ** (हो) व 3/1 अक । **सम्मत्तं** (सम्मत्त) 1/1 । **सम्मत्ताओ** (सम्मत्त 5/1 । **चरणं** (चरण) 1/1 । **चरणाओ** (चरण) 5/1 । **णिव्वाणं** (णिव्वाण) 1/1 ।

10 **सुत्तम्मि**[3] (सुत्त) 7/1 । **जाणमाणो** (जाण) वकृ 1/1 । **भवस्स** (भव) 4/1 वि । **भवणासणं** [(भव)-(णासण) 1/1] । **च** (अ) = निश्चय ही **सो** (त) 1/1 सवि । **कुणदि** (कुण) व 3/1 सक । **सूई** (सूई) 1/1 । **जहा** (अ) = जैसे । **असुत्ता** (असुत्ता) 1/1 वि । **णासदि** (णास) व 3/1 अक । **सुत्तो**[4] (सुत) 7/1 । **सहा**[4] (सहा) 1/1 वि **णो वि** (अ) = कभी नहीं ।

3. कभी कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है । (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-135)
4. 'सह' के योग में तृतीया विभक्ति होती है और यहां तृतीया के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग हुआ हैं । (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-135)

11 **पुरिसो** (पुरिस) 1/1 । **वि** (अ) = भी । **जो** (ज) 1/1 सवि । **ससुत्तो** (ससुत्त) 1/1 वि । **ण** (अ) = नहीं । **विणासइ** (विणास) व 3/1

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अक । **सो** (त) 1/1 सवि । **गओ** (गअ) भूकृ 1/1 अनि । **वि** (अ) = ही । **संसारे** (संसार) 7/1 । **सच्चेयणपच्चक्खं** [(सच्चेयण)–(पच्चक्ख) 1/1 । **णासदि** (णास) व 3/1 सक । **तं** (त) 2/1 सवि । **सो** (त) 1/1 सवि । **अदिस्समाणो** (अदिस्समाण) कर्म वकृ 1/1 । **वि** (अ) = भी ।

12 **सुत्तत्थं** [(सुत्त) + (अत्थं)] [(सुत्त)–(अत्थ) 2/1)] । **जिणभणियं** [(जिण) – (भण) भूकृ 2/1] । **जीवाजीवादिबहुविहं** [(जीव) + (अजीव) + (आदि) + (बहुविहं)] [(जीव)–(अजीव)–(आदि)–(बहुविह) 2/1 वि] । **अत्थं** (अत्थ) 2/1 । **हेयाहेयं** [(हेय) + (अहेयं)] [(हेय)–(अहेय) 2/1 वि] । **च** (अ) = भी । **तहा** (अ) = तथा । **जो** (ज) 1/1 सवि । **जाणइ** (जाण) व 3/1 सक । **सो** (त) 1/1 सवि **हु** (अ) = निश्चय ही । **सद्दिट्ठी** (सद्दिट्ठि) 1/1 वि ।

13 **जं** (ज) 1/1 सवि । **सुत्तं** (सुत्त) 1/1 । **जिणउत्तं** [(जिण)–(उत्त) भूकृ 1/1 अनि] । **ववहारो** (ववहार) 1/1 । **तह य** (अ) = तथा । **जाण** (जाण) विधि 2/1 सक । **परमत्थो** (परमत्थ) 1/1 । **तं** (त) 2/1 सवि । **जाणिऊण** (जाण) संकृ । **जोई** (जोइ) 1/1 । **लहइ** (लह) व 3/1 सक । **सुहं** (सुह) 2/1 । **खवइ** (खव) व 3/1 सक । **मलपुंजं** [(मल)–(पुंज) 2/1] ।

14 **अह** (अ) = यदि । **पुण** (अ) = परन्तु । **अप्पा** (अप्प) 2/1 अपभ्रंश । **णिच्छदि** [(ण) + (इच्छदि)] । ण (अ) = नहीं इच्छदि (इच्छ) व 3/1 सक । **धम्माइं** (धम्म) 2/2 । **करेइ** (कर) व 3/1 सक । **णिरवसेसाइं** (णिरवसेस) 2/2 वि । **तह वि** (अ) = तो भी । **ण** (अ) = नहीं । **पावदि** (पाव) व 3/1 सक । **सिद्धि** (सिद्धि) 2/1 । **संसारत्थो** (संसारत्थ) 1/1 वि । **पुणो** (अ) = फिर । **भणिदो** (भण) भूकृ 1/1 ।

15 **एएण** (एअ) 3/1 सवि । **कारणेण** (कारण) 3/1 । **य** (अ) = हीं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तं (त) 2/1 सवि। **अप्पा**[1] (अप्प) 2/1 अपभ्रंश। **सद्दहेह**[1] (सद्दह) आज्ञा 2/2 सक। **तिविहेण** (क्रिविअ)=तीन प्रकार से। **जेण** (ज) 3/1 सवि। **य** (अ)=चूँकि। **लहेइ** (लह) व 3/1 सक। **मोक्खं** (मोक्ख) 2/1। **तं** (त) 1/1 सवि। **जाणिज्जइ**[2] (जाण) व कर्म 3/1 सक। **पयत्तेण** (क्रिविअ)=प्रयत्न पूर्वक।

1. 'श्रद्धा' के योग में द्वितीया का प्रयोग होता है। अथवा कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग हो जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)
2. वर्तमान काल का प्रयोग उपदेश देने में उसी प्रकार होता है, जिस प्रकार विधि का।

16 **अण्णाणं** (अण्णाण) 2/1। **मिच्छत्तं** (मिच्छत्त) 2/1। **वज्जहि** (वज्ज) विधि 2/1 सक। **णाणे** (णाण) 7/1। **विसुद्धसम्मत्ते** [(विसुद्ध) वि-(सम्मत्त) 7/1]। **अह** (अ)=और। **मोहं** (मोह) 2/1। **सारंभं** (सारंभ) 2/1 वि। **परिहर** (परिहर) विधि 2/1 सक। **धम्मे** (धम्म) 7/1। **अहिंसाए** (अहिंसा) 7/1।

17 **पाउण** (पा) संकृ। **णाणसलिलं** [(णाण)-(सलिल) 2/1]। **णिम्मलसुविसुद्धभावसंजुत्ता** [(णिम्मल))-(सुविसुद्ध) वि-(भाव)-(संजुत्त) 1/2 वि]। **हुंति** (हु) व 3/2 अक। **सिवालयवासी** [(सिवालय)-(वासि) 1/2 वि]। **तिहुवणचूडामणी** [(तिहुवण)-(चूडामणि) 1/1]। **सिद्धा** (सिद्ध) 1/2।

18 **णाणगुणेहिं**[3] [(णाण)-(गुण) 3/2]। **विहीणा** (विहीण) 1/2 वि। **ण** (अ)=नहीं। **लहंते** (लह) व 3/2 सक। **ते** (त) 1/2 सवि। **सुइच्छियं** [(सु) अ=भली प्रकार से-(इच्छ) भूकृ 2/1]। **लाहं** (लाह)

3. कभी कभी पंचमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-136)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

2/1 । **इय** (अ)=इस प्रकार । **णाउं** (णा) हेकृ । **गुणदोसं** [(गुण)-(दोस) 2/1] । **तं** (त) 2/1 । **सण्णाणं** (सण्णाण) 2/1 । **वियारेहि** (वियारेा) आज्ञा 2/1 सक ।

19 **चारित्तसमारूढो** [(चारित्त) + (सम) + (आरूढो)] [(चारित्त)-(सम) अ=पूर्णतः-(आरूढ)[1] भूक 1/1 अनि] । **अप्पा**[2] (अप्प) 2/1 अपभ्रंश । **सुपरं** [(सु) अ=श्रेष्ठ-(पर) 2/1 वि] । **ण** (अ)=नहीं । **ईहए** (ईह) व 3/1 सक । **णाणी** (णाणिं) 1/1 वि । **पावइ** (पाव) व 3/1 सक । **अइरेण** (अ)=शीघ्र । **अणोवमं** (अणोवम) 2/1 वि । **जाण** (जाण) विधि 2/1 सक । **णिच्छयदो** (णिच्छय) पंचमी अर्थक 'दो' प्रत्यय ।

1. इसका प्रयोग प्रायः कर्तृवाच्य में किया जाता है ।
2. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है । (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)

20 **संजमसंजुत्तस्स** [(संजम)-(संजुत्त) भूक 6/1 अनि] । **य** (अ)=तथा । **सुझाणजोयस्स** [(सु) अ=श्रेष्ठ-(झाण)-(जोय) 6/1 वि] । **मोक्खमग्गस्स** [(मोक्ख)-(मग्ग) 6/1] । **णाणेण** (णाण) 3/1 । **लहदि** (लह) व 3/1 सक । **लक्खं** (लक्ख) 2/1 । **तम्हा** (अ)=इसलिये । **णाणं** (णाण) 1/1 । **च** (अ)=निश्चय ही । **णायव्वं** (णा) विधिकृ 1/1 ।

21 **जह** (अ)=जैसे । **णवि** (अ)=नहीं । **लहदि**[3] (लह) व 3/1 सक । **हु** (अ)=बिल्कुल ही । **लक्खं** (लक्ख) 2/1 । **रहिओ** (रहिअ) 1/1 वि । **कंडस्स**[4] (कंड) 6/1 । **वेज्झयविहीणो** [(वेज्झय) 'य' स्वार्थिक वि-(विहीण) 1/1 वि] । **तह** (अ)=वैसे ही । **लक्खदि** (लक्ख) व 3/1 सक । **लक्खं** (लक्ख) 2/1 । **अण्णाणी** (अण्णाणिं) 1/1 वि । **मोक्खमग्गस्स** [(मोक्ख)-(मग्ग) 6/1] ।

3. 'लह' का अर्थ यहाँ 'देखना' है ।
4. कभी कभी तृतीय विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है । (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

22 **णाणं** (णाण) 1/1 । **पुरिसस्स**[1] (पुरिस) 6/1 । **हवदि** (हव) व 3/1 अक । **लहदि** (लह) व 3/1 सक । **सुपुरिसो** (सु-पुरिस) 1/1 । **वि** (अ) = ही । **विणयसंजुत्तो** [(विणय)–(संजुत्त) 1/1 वि] **णाणेण** (णाण) 3/1 । **लहदि** (लह) व 3/1 सक । **लक्खं** (लक्ख) 2/1 । **लक्खंतो** (लक्ख) वकृ 1/1 । **मोक्खमग्गस्स** [(मोक्ख)–(मग्ग) 6/1] ।

1. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है । (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)

23 **मइधणुहं** [(मइ)–(धणुह) 1/1] । **जस्स** (ज) 4/1 स । **थिरं** (थिर) 1/1 वि । **सुदगुण** [(सुद)–(गुण)मूलशब्द 1/1] । **बाणा** (बाण)1/2 । **सुअत्थि** (अ) = श्रेष्ठ । **रयणत्तं** (रयणत्त) 1/1 । **परमत्थबद्धलक्खो** [(परमत्थ)–(बद्ध)भूकृ अनि–(लक्ख)1/1] । **ण वि** (अ) = कभी नहीं । **चुक्कदि** (चुक्क) व 3/1 अक । **मोक्खमग्गस्स**[2] [(मोक्ख)–(मग्ग) 6/1]

2. कभी कभी पंचमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है । (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)

24 **धम्मो** (धम्म) 1/1 । **दयाविसुद्धो** [(दया)–(विसुद्ध) 1/1 वि] । **पव्वज्जा** (पव्वज्जा) 1/1 । **सव्वसंगपरिचत्ता** [(सव्व)वि–(संग)–(परिचत्ता) भूकृ 1/1 अनि] । **देवो** (देव) 1/1 । **ववगयमोहो** [(ववगय) भूकृ अनि –(मोह) 1/1] । **उदययरो** (उदययर) 1/1 वि । **भव्वजीवाणं** [(भव्व) –(जीव) 6/2] ।

25 **सत्तू मित्ते**[3] [(सत्तू)–(मित्त) 7/1] । **य** (अ) = निश्चय ही । **समा** (समा)1/1 वि । **पसंसणिंदाअलद्धिलद्धिसमा**[(पसंस[4])–(णिंदा)–(अलद्धि) –[(लद्धि)–(समा) 1/1 वि] । **तणकणए** [(तण)–(कणअ) 7/1] । **समभावा** [(सम)–(भावा) 1/1] । **पव्वज्जा** (पव्वज्जा) 1/1 । **एरिसा** (एरिसा) 1/1 वि । **भणिया** (भण) भूकृ 1/1 ।

3. छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'त्तु' को 'त्त' किया गया है ।
4. छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'पसंसा' को पसंस किया गया है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

26 **उत्तममज्झिमगेहे** [(उत्तम) वि–(मज्झिम) वि–(गेह) 7/1]। **दारिद्दे** (दारिद्द) 7/1। **ईसरे** (ईसर) 7/1। **णिरावेक्खा** (णिरावेक्खा) 1/1 वि। **सव्वत्थ** (अ) = प्रत्येक स्थान में। **गिहिदंपिंडा** [(गिहिद)–(पिंडा) 1/1]। **पव्वज्जा** (पव्वज्जा) 1/1। **एरिसा** (एरिसा) 1/1 वि। **भणिया** (भण) भूक 1/1।

27 **णिम्मोहा** (णिम्मोहा) 1/1 वि। **णिल्लोहा** (णिल्लोहा) 1/1 वि। **णिम्मोहा** (णिम्मोहा) 1/1 वि। **णिक्कलुसा** (णिक्कलुसा) 1/1 वि। **णिब्भय** (णिब्भय) अपभ्रंश 1/1 वि। **णिरासभावा** [(णिरास) वि–(भावा) 1/1]। **पव्वज्जा** (पव्वज्जा) 1/1। **एरिसा** (एरिसा) 1/1 वि। **भणिया** (भण) भूक 1/1।

28 **भावो** (भाव) 1/1। **हि** (अ) = निस्संदेह। **पढमलिंगं** [(पढम) वि–(लिंग) 1/1]। **ण** (अ) = नहीं। **दव्वलिंगं** [(दव्व)–(लिंग) 1/1] **च** (अ) = किन्तु। **जाण** (जाण) विधि 2/1 सक। **परमत्थं** (परमत्थ) 1/1। **कारणभूदो** [(कारण)–भूद भूक 1/1 अनि]। **गुणदोसाणं** [[गुण)–(दोस) 6/2]। **जिणा** (जिण) 1/2। **विंति**[1] (बू) व 3/2 सक।

1. प्राकृतमार्गोपदेशिका, पृष्ठ 152.

29 **भावविसुद्धिणिमित्तं** [(भाव)–(विसुद्धि)–(णिमित्त) 1/1]। **बाहिरगंथस्स** [(बाहिर) वि–(गंथ) 6/1]। **कीरए** (कीरए) व कर्म 3/1 सक। **चाओ** (चाअ) 1/1। **बाहिरचाओ** [(बाहिर) वि–(चाअ) 1/1]। **विहलो** (विहल) 1/1 वि। **अब्भंतरगंथजुत्तस्स** [(अब्भंतर) वि–(गंथ)–(जुत्त) 6/1 वि]।

30. **जाणहि** (जाण) विधि 2/1 सक। **भावं** (भाव) 2/1। **पढमं** (अ) = सर्व प्रथम **किं** (कि) 1/1 सवि। **ते** (तुम्ह) 4/1 स। **लिंगेण** (लिंग) 3/1। **भावरहिएण** [(भाव)–(रह)भूक 3/1]। **पंथिय** (पंथिय) 8/1।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सिवपुरिपंथं [(सिवपुरि)-(पंथ) 1/1] । **जिणउवइट्ठं** [(जिण)-(उवइट्ठ) 1/1 वि] । **पयत्तेण** (क्रिविअ) = सावधानी पूर्वक ।

31 **रयणत्तये** [(रयण)-(त्तय) 7/1] । **अलद्धे** (अलद्ध) भूकृ 7/1 अनि । **एवं** (अ) = इस प्रकार । **भमिओ**[1] (भम) भूकृ 1/1 । **सि** (अस) व 2/1 अक । **दीहसंसारे**[2] [(दीह) क्रिविअ = दीर्घकाल तक-(संसार) 7/1] । **इय** (अ) = इस प्रकार । **जिणवरेहिं** (जिणवर) 3/2 । **भणियं** (भण) भूकृ 1/1 । **तं** (अ) = इसलिए । **रयणत्तं** (रयणत्त) 2/1 । **समायरह** (समायर) विधि 2/2 सक ।

1. गत्यार्थक क्रियाओं के योग में द्वितीया विभक्ति होती है । तथा गत्यार्थक क्रिया से भूतकालिक कृदन्त कर्तृवाच्य में भी होता है ।

2. कभी कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी का प्रयोग होता है (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-135)

32 **भावविमुत्तो** [(भाव)-(विमुत्त) भूकृ 1/1 अनि] । **मुत्तो**(मुत्त)1/1 वि । **ण** (अ) = नहीं । **य** (अ) = परन्तु । **मुत्तो** (मुत्त) 1/1 वि । **बंधवाइमित्तेण**[3] [(बंधव) + (आइ) + (मित्तेण)] [(बंधव)-(आइ)-(मित्त)3/1] **इय** (अ) = इस प्रकार । **भाविऊण** (भाव) संकृ । **उज्झसु** (उज्झ) विधि 2/1 सक । **गंथं** (गंथ) 2/1 । **अब्भंतरं** (अब्भंतर) 2/1 वि **धीर** (धीर) 8/1 ।

3. कभी कभी पंचमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है । (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-136)

33 **देहादिसंगरहिओ**[4] [(देह) + (आदि) + (संग) + (रहिओ)] [(देह)-(आदि)-(संग)-(रह) भूकृ 1/1] । **माणकसाएहिं** [(माण)-(कसाअ) 3/2] । **सयलपरिचत्तो** [(सयल) वि-(परिचत्त) भूकृ 1/1 अनि] ।

4. करण के साथ या समास के अन्त में इसका अर्थ होता है मुक्त, वंचित, रहित ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अप्पा (अप्प) 1/1 । **अप्पम्मि** (अप्प) 7/1 । **रओ** (रअ) भूक 1/1 अनि । **स** (त) 1/1 सवि । **भावलिंगी** [(भाव)–(लिंगि) 1/1 वि] । **हवे** (हव) व 3/1 अक । **साहू** (साहु) 1/1 ।

34 **ममत्तिं** (ममत्ति) 2/1 । **परिवज्जामि** (परिवज्ज) व 1/1 सक । **णिम्ममत्तिमुवट्ठिदो** [(णिम्ममत्ति) + (उवट्ठिदो)] णिम्ममत्ति[1] (णिम्ममत्ति) 2/1 । **उवट्ठिदो** (उवट्ठिद) भूक 1/1 अनि । **आलंबणं** (आलंबण) 1/1 । **च** (अ) = ही । **मे** (अम्ह) 6/1 स । **आदा** (आद) 1/1 । **अवसेसाइं** (अवसेस) 2/2 वि । **वोसरे** (वोसर) व 3/1 सक ।

1. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है । (हेम प्राकृत व्याकरण : 3–137) ।

35 **भावेह** (भाव) आज्ञा 2/2 सक । **भावसुद्धं** [(भाव)–(सुद्ध) 2/1 वि] । **अप्पा** (अप्प) 2/1 अपभ्रंश । **सुविसुद्धणिम्मलं** [(सु) अ = पूर्ण–(विसुद्ध) –(णिम्मल) 2/1 वि] । **चेव** (अ) = निश्चय ही । **लहु**[2] (लहु) मूलशब्द वि 2/2 । **चउगइ** [(चउ)–(गइ) मूल शब्द 2/2] । **चइऊण** (चय → च अ) संकृ । **जइ** (अ) = यदि । **इच्छह** (इच्छ) व 2/2 सक । **सासयं** (सासय) 2/1 वि **सुक्खं** (सुक्ख) 2/1 ।

2. पद्य में किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द काम में लाया जा सकता है । (पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ, 517)

36 **जो** (ज) 1/1 सवि । **जीवो** (जीव) 1/1 । **भावंतो** (भाव) वकृ 1/1 । **जीवसहावं** [(जीव)–(सहाव) 2/1] । **सुभावसंजुत्तो** [(सु) अ = श्रेष्ठ–(भाव)–(संजुत्त) 1/1 वि] । **सो** (त) 1/1 सवि । **जरमरणविणासं** [(जर)–(मरण)–(विणास) 2/1] । **कुणइ** (कुण) व 3/1 सक । **फुडं** (अ) = निश्चय ही । **लहइ** (लह) व 3/1 सक । **णिव्वाणं** (णिव्वाण) 2/1 ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

37 **जीवो** (जीव) 1/1 । **जिणपण्णत्तो** [(जिण)–(पण्णत्त) भूक 1/1 अनि] **णाणसहाओ** [(णाण)–(सहाअ) 1/1] । **य** (अ) = तथा । **चेयणासहिओ** [(चेयणा)–(सहिअ) 1/1 वि] । **सो** (त) 1/1 सवि । **जीवो** (जीव) 1/1 । **णायव्वो** (णा)–विधिकृ 1/1 । **कम्मक्खयकरणणिमित्तो** [(कम्म)–(क्खय)–(करण) वि–(णिमित्त) 1/1 ।

38 **अरसमरूवमगंधं** [(अरसं) + (अरूवं) + (अगंधं)] । **अरसं** (अरस) 1/1 वि । **अरूवं** (अरूव) 1/1 वि । **अगंधं** (अगंध) 1/1 वि । **अव्वत्तं** (अव्वत्त) 1/1 वि । **चेयणागुणमसद्दं** [(चेयणा) + (गुणं) + (असद्दं)] [(चेयणा)–(गुण) 1/1] । **असद्दं** (असद्द) 1/1 वि । **जाणमलिंगग्गहणं** [(जाणं) + (अलिंग) + (ग्गहणं)] जाणं (जाण) 1/1 [(अलिंग) वि–(ग्गहण) 1/1] **जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं** [(जीवं) + (अणिद्दिट्ठ) + (संठाणं)] जीवं (जीव) 1/1 [(अणिद्दिट्ठ) वि–(संठाण) 1/1]

39 **पडिएण** (पड) भूक 3/1 । **वि** (अ) = भी । **किं** (किं) 1/1 सवि । **कीरइ** (कीरइ) व कर्म 3/1 सक अनि । **किं** (किं) 1/1 सवि । **वा** (अ) = अथवा । **सुणिएण** (सुण) भूक 3/1 । **भावरहिएण** [(भाव)–(रहिअ) 3/1 वि] । **भावो** (भाव) 1/1 । **कारणभूदो** [(कारण)–(भूद) भूक 1/1 अनि] । **सायारणयारभूदाणं** [(सायार) + (अणयार) + (भूदाणं)] [(सायार) वि–(अणयार) वि–(भूद) 6/2 वि] ।

40 **भावं**[1] (भाव) 1/1 । **तिविहपयारं**[1] [(तिविह) वि–(पयार) 1/1] । **सुहासुहं** [(सुह) + (असुहं)] [(सुह) वि–(असुह) वि] । **सुद्धमेव** [(सुद्धं) + (एव)] सुद्धं (सुद्ध) 1/1 एव (अ) = ही । **णायव्वं** (णा) विधिकृ 1/1 । **असुहं** (असुह) 1/1 वि । **च** (अ) = और । **अट्टरुद्दं** [(अट्ट)–

1. गुण इत्यादि शब्द विकल्प से नपुंसक लिंग में और पुल्लिग में प्रयुक्त किए जाते हैं। यहां पुं., नपुसंक लिंग में प्रयुक्त है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 1–34)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(रुद्ध) 1/1] । **सुहधम्मं** [(सुह) वि–(धम्म) 1/1] । **जिणवरिंदेहिं** (जिणवरिंद) 3/2 ।

41 **सुद्धं** (सुद्ध) 1/1 वि । **सुद्धसहावं**[1] [(सुद्ध) वि–(सहाव) 1/1] । **अप्पा**[2] (अप्प) 2/1 अपभ्रंश । **अप्पम्मि**[3] (अप्प) 7/1 । **तं** (त) 1/1 सवि । **च** (अ) = ही । **णायव्वं** (णा) विधिकृ 1/1 । **इदि** (अ) = इस प्रकार । **जिणवरेहिं** (जिणवर) 3/2 । **भणियं** (भण) भूकृ 1/1 । **जं** (ज) 1/1 सवि । **सेयं** (सेय) 1/1 वि । **तं** (त) 2/1 सवि । **समायरह** (समायर) विधि 2/2 सक ।

1. गुण इत्यादि शब्द विकल्प से नपुंसक लिंग में और पुल्लिग में प्रयुक्त किए जाते हैं यहाँ पु., नपुंसक लिंग में प्रयुक्त हैं। (हेम प्राकृत व्याकरण : 1–34)
2. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 1–137)
3. कभी कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3–135)

42 **अह** (अ) = यदि । **पुण** (अ) = किन्तु । **अप्पा** (अप्प) 2/1 अपभ्रंश । **णिच्छदि** [(ण) + (इच्छदि)] ण (अ) = नहीं इच्छदि (इच्छ) व 3/1 सक । **पुण्णाइं** (पुण्ण) 2/2 । **करेदि** (कर) व 3/1 सक । **णिरवसेसाइं** (णिरवसेस) 2/2 वि । **तह वि** (अ) = तो भी । **ण** (अ) = नहीं । **पावदि** (पाव) व 3/1 सक । **सिद्धि** (सिद्धि) 2/1 । **संसारत्थो** (संसारत्थ) 1/1 वि । **पुणो** (अ) = ही । **भणिदो** (भण) भूकृ 1/1 ।

43 **बाहिरसंगच्चाओ** [(बाहिर) वि–(संग)–(च्चाअ) 1/1] । **गिरिसरिदरिकंदराइ** [(गिरि)–(सरि)–(दरि)–(कंदरा) 7/1] । **आवासो** (आवास) 1/1 । **सयलो** (सयल) 1/1 वि । **झाणज्झयणो** [(झाण) + (अज्झयण)] [(झाण)–(अज्झयण) 1/1] । **णिरत्थओ** (णिरत्थअ) 1/1 वि । **भावरहियाणं** [(भाव)–(रहिय) 4/2 वि] ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

44 **भंजसु** (भंज) विधि 2/1 सक । **इंदियसेणं** [(इंदिय)–(सेणा) 2/1] । **भंजसु** (भंज) विधि 2/1 सक । **मणमक्कडं** [(मण)–(मक्कड) 2/1] । **पयत्तेण** (क्रिविअ) = प्रयत्नपूर्वक । **मा** (अ) = मत । **जणरंजणकरणं** [(जण)–(रंजण)–(करण) 2/1] । **बाहिरवयवेस**[1] [(बाहिर) वि–(वय)–(वेस) मूलशब्द 2/1] । **तं** (तुम्ह) 1/1 सवि । **कुणसु** (कुण) विधि 2/1 सक ।

1. पद्य में किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द काम में लाया जा सकता है । (पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 517)

45 **जह** (अ) = जैसे । **पत्थरो** (पत्थर) 1/1 **ण** । (अ) = नहीं । **भिज्जइ** (भिज्जइ) व कर्म 3/1 सक अनि । **परिट्ठिओ**(परिट्ठिअ) भूक 1/1 अनि । **दीहकालमुदएण** [(दीहकालं) + (उदएण)] दीहकालं (अ) = दीर्घ काल तक । उदएण[2] (उदअ) 3/1 । **तह** (अ) = वैसे ही । **साहू** (साहु) 1/1 । **वि** (अ) = भी । **उवसग्गपरीसहेहिंतो**[3] [(उवसग्ग)–(परीसह) 5/2] ।

2. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर तृतीय विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है । (हेम प्राकृत व्याकरण : 3–137)

3. किसी कार्य का कारण बतलाने वाली संज्ञा में तृतीया या पंचमी का प्रयोग किया जाता है ।

46 **पावं** (पाव) 1/1 । **हवइ** (हव) व 3/1 अक । **असेसं** (असेस) 1/1 वि । **पुण्णमसेसं** [(पुण्णं) + (असेसं)] पुण्णं (पुण्ण) 1/1 असेसं (असेस) 1/1 वि । **च** (अ) = और । **परिणामा** (परिणाम) 5/1 । **परिणामादो** (परिणाम) 5/1 । **बंधो** (बंध) 1/1 । **मुक्खो** (मुक्ख) 1/1 **जिणसासणे** [(जिण)–(सासण) 7/1] । **दिट्ठो** (दिट्ठ) 1/1 वि ।

47 **जह** (अ) = जिस प्रकार । **दीवो** (दीव) 1/1 । **गब्भहरे** (गब्भहर) 7/1 । **मारुयबाहाविवज्जिओ** [(मारुय)–(बाहा)–(विवज्जिअ) 1/1 वि] । **जलइ** (जल) व 3/1 अक । **तह** (अ) = उसी प्रकार । **रायानिलरहिओ**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

[(राय)+(अनिल)+(रहिओ)] [(राय)–(अनिल)–(रहिअ) 1/1 वि] । **झाणपईवो** [(झाण)–(पईव) 1/1] । **वि** (अ)=भी । **पज्जलइ** (पज्जल) व 3/1 अक ।

48 **झायहि** (झा)[1] विधि 2/1 सक । **पंच** (पंच) 2/2 वि । **वि** (अ)=ही । **गुरवे** (गुरव) 2/2 । **मंगलचउसरणलोयपरियरिए** [(मंगल) वि–(चउ) वि–(सरण)–(लोय)–(परियरिअ) 2/2वि] । **णरसुरखेयरमहिए** [(णर)–(सुर)–(खेयर)–(मह) भूक 2/2] । **आराहणणायगे** [(आराहण)–(णायग) 2/2] **वीरे** (वीर) 2/2 वि ।

1. अकारान्त धातुओं के अतिरिक्त अन्य स्वरान्त धातुओं में विकल्प से **अ (य)** जोड़ने के पश्चात् प्रत्यय जोड़ा जाता है ।

49 **उत्थरइ** (उत्थर) व 3/1 सक । **जा** (अ)=जब तक । **ण** (अ)=नहीं । **जर** (जर) 1/1 वि अपभ्रंश । **ओ** (अ)=संबोधन । **रोयग्गी** [(रोय)+(अग्गी)] [(रोय)–(अग्गि) 1/1] । **डहइ** (डह) व 3/1 सक । **देहउडि** [(देह)–(उडि) 2/1] **इंदिग्रबलं** [(इंदिय)–(बल) 1/1] । **वियलइ** (वियल) व 3/1 अक । **ताव** (अ)=तब तक । **तुमं** (तुम्ह) 1/1 स । **कुणहि** (कुण) विधि 2/1 सक । **अप्पहियं** [(अप्प)–(हिय)2/1] ।

50 **जीवविमुक्को** [(जीव)–(विमुक्क) भूक 1/1 अनि] । **सवओ** (सव) स्वार्थिक 'अ' प्रत्यय 1/1 । **दंसणमुक्को** [(दंसण)–(मुक्क) 1/1 वि] । **य** (अ)=किन्तु । **होइ** (हो) व 3/1 अक । **चलसवओ** [(चल)–(सव) स्वार्थिक 'अ' प्रत्यय 1/1] । **लोयअपुज्जो** [(लोय)–(अपुज्ज) 1/1 वि] । **लोउत्तरयम्मि** [(लोअ)+(उत्तरयम्मि)] [(लोअ)–(उत्तर) स्वार्थिक 'य' प्रत्यय 7/1] ।

51 **जह** (अ)=जैसे । **तारायण**[1] (तारय) 6/2 । **चंदो** (चंद) 1/1 । **मयराओ** (मयराअ) 1/1 । **मयउलाण**[1] [(मय)–(उल) 6/2] । **सव्वाण**[1] (सव्व) 6/2 वि । **अहिओ** (अहिअ) 1/1 वि । **तह** (अ)=

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वैसे ही। **सम्मत्तो** (सम्मत्त) 1/1। **रिसिसावयदुविहधम्माणं**[1] [(रिसि)–(सावय)–(दुविह) वि–(धम्म) 6/2]।

1. जिस समुदाय में से एक को छाँटा जाता है, उस समुदाय में षष्ठी अथवा सप्तमी होती है।

52 **इय** (अ) = इस प्रकार। **णाउं** (णा) संकृ। **गुणदोसं** [(गुण)–(दोस) 2/1]। **दंसणरयणं** [(दंसण)–(रयण) 2/1]। **धरेह** (धर) आज्ञा 2/2 सक। **भावेण** (क्रिविअ) = भावपूर्वक **सारं** (सार) 1/1। **गुणरयणाणं** [(गुण)–(रयण) 6/2]। **सोवाणं** (सोवाण) 1/1। **पढम**[2] (पढम) 1/1 वि। **मोक्खस्स** (मोक्ख) 6/1।

2. अनुस्वार का लोप विकल्प से होता हैं। (हेम प्राकृत व्याकरण 1-29)।

53 **णाणी** (णाणि) 1/1 वि। **सिव** (सिव) मूलशब्द 1/1। **परमेट्ठी** (परमेट्ठि) 1/1। **सव्वण्हू** (सव्वण्हु) 1/1 वि। **विण्हु** (विण्हु) मूलशब्द 1/1। **चउमुहो** (चउमुह) 1/1। **बुद्धो** (बुद्ध) 1/1। **अप्पो** (अप्प) 1/1। **वि** (अ) = ही। **य** (अ) = और। **परमप्पो** (परमप्प) 1/1। **कम्मविमुक्को** [(कम्म)–(विमुक्क) 1/1 वि]। **य** (अ) = भी। **होइ** (हो) व 3/1 अक। **फुडं** (अ) = निस्संदेह।

54 **जह** (अ) = जैसे। **सलिलेण** (सलिल) 3/1। **ण** (अ) = नहीं। **लिप्पइ** (लिप्पइ) व कर्म 3/1 सक अनि। **कमलिणिपत्तं** [(कमलिणी)–(पत्त) 1/1]। **सहावपयडीए** [(स–हाव)–(पयडि) 3/1]। **तह** (अ) = वैसे ही। **भावेण** (भाव) 3/1। **कसायविसएहिं** [(कसाय)–(विसअ) 3/2]। **सप्पुरिसो** (सप्पुरिस) 1/1।

55 **ते** (त) 1/2 सवि। **धीरवीरपुरिसा** [(धीर) वि–(वीर) वि–(पुरिस) 1/2]। **खमदमखग्गेण** [(खम)–(दम)–(खग्ग) 3/1]। **विप्फुरंतेण** (विप्फुर) वकृ 3/1। **दुज्जयपबलबलुद्धरकसायभड** [(दुज्जय) + (पबल)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

+(बल)+(उद्धर)+(कसाय)+(भड)] [(दुज्जय) वि– (पबल)वि–(बल)–(उद्धर) वि–(कसाय)–(भड)[1] मूलशब्द 1/2] । **णिज्जिया** (णिज्जय) 1/2 वि । **जेहिं** (ज) 3/1 सवि ।

1. पद्य में किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द काम में लाया जा सकता है । (पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 517)

56 **मायावेल्लि** [(माया)-(वेल्लि)[1] मूलशब्द 2/2] । **असेसा** (असेसा) 2/2 वि । **मोहमहातरुवरम्मि** [(मोह)–(महा)–(तरुवर) 7/1] । **आरूढा** (आरूढ) भूक 2/2 अनि । **विसयविसपुप्फफुल्लिय** [(विसय)–(विस)–(पुप्फ)–(फुल्ल)[2] भूक मूलशब्द 2/2] । **लुणंति** (लुण) व 3/2 सक । **मुणि**[3] (मुणि) मूलशब्द 1/2 । **णाणसत्थेहिं** [(णाण)–(सत्थ) 3/2] ।

2. पद्य में किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द काम में लाया जा सकता है । (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 517)

3. कर्ताकारक के स्थान में केवल मूल संज्ञा शब्द भी काम में लाया जा सकता है (पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 518)

57 **मोहमयगारवेहिं** [(मोह)–(मय)-(गारव) 3/2] । **य** (अ)=तथा । **मुक्का** (मुक्क) 1/2 वि । **जे** (ज) 1/2 सवि । **करुणभावसंजुत्ता** [(करुण)–(भाव)–(संजुत्त) 1/2 वि] **ते** (त) 1/2 सवि । **सव्वदुरियखंभं** [(सव्व) वि–(दुरिय)–(खंभ) 2/1] । **हणंति** (हण) व 3/2 सक । **चारित्तखग्गेण** [(चारित्त)–(खग्ग) 3/1] ।

58 **जं** (ज) 2/1 सवि । **जाणिऊणं** (जाण) संकृ **जोई** (जोइ) 1/1 । **जोअत्थो** (जोअत्थ) 1/1 वि । **जोइऊण** (जोअ) संकृ । **अणवरयं** (क्रिविअ)=लगातार । **अव्वाबाहमणंतं** [(अव्वाबाहं)+(अणंतं)] । **अव्वाबाहं** (अव्वाबाह) 2/1 वि । **अणंतं** (अणंत) 2/1 । **अणोवमं**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(अणोवम) 2/1 । **लहइ** (लह) व 3/1 सक । **णिव्वाणं** (णिव्वाण) 2/1 ।

59 **ति** गारो [(ति) वि-(पयार) 1/1] । **सो** (त) 1/1 सवि । **अप्पा** (अप्प) 1/1/ । **परब्भितरबाहिरो** [(पर) + (अब्भितर) + (बाहिरो)] [(पर) वि-(अब्भितर) वि-(बाहिर) 1/1 वि] । **हु** (अ) = निश्चय ही । **हेऊण**[1] (हेउ) 6/2 । **तत्थ** (अ) = उस अवस्था में । **परो** (पर) 1/1 वि । **झाइज्जइ** (झा) व कर्म 3/1 सक । **अंतोवायेण** [(अंत) + (उवायेण)] अंत (अ) = आंतरिक उवायेण (उवाय) 3/1 । **चयहि** (चय) विधि 2/1 सक । **बहिरप्पा** (बहिरप्प) 2/1 अपभ्रंश ।

1. कभी-कभी तृतीया के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है । (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)

60 **अक्खाणि** (अक्ख) 1/2 । **बहिरप्पा** (बहिरप्प) 1/1 । **अंतरप्पा** (अंतरप्प) 1/1 । **हु** (अ) = ही । **अप्पसंकप्पो** [(अप्प)-(संकप्प) 1/1] । **कम्मकलंकविमुक्को** [(कम्म)-(कलंक)-(विमुक्क) 1/1 वि] । **परमप्पा** (परमप्प) 1/1 । **भण्णए** (भण्ण) व कर्म 3/1 सक अनि । **देवो** (देव) 1/1 ।

61 **आरुहवि**[2] (आरुह) संकृ अपभ्रंश । **अंतरप्पा** (अंतरप्प) 2/1 अपभ्रंश) । **बहिरप्पा** (बहिरप्प) 2/1 अपभ्रंश । **छंडिऊण** (छंड) संकृ । **तिविहेण** (तिविह) 3/1 । **झाइज्जइ** (झा) व कर्म 3/1 सक । **परमप्पा** (परमप्पा) 1/1 । **उवइट्ठं** (उवइट्ठ) 1/1 वि. । **जिणवरिंदेहि** (जिणवरिंद) 3/2 ।

2. 'आ' पूर्वक 'रुह' धातु के अर्थ प्रयुक्त संज्ञा के अनुसार विभिन्न प्रकार के होते हैं । (आरुह + अवि) = आरुहवि यहाँ 'अवि' प्रत्यय जोड़ा गया है ।

62 **बहिरत्थे** [(बहिर) + (अत्थे)] [(बहिर) वि-(अत्थ) 7/1] । **फुरियमणो** [(फुरिय) भूकृ-(मण) 1/1] । **इंदियदारेण** [(इंदिय)-(दार) 3/1] । **णियसरूवचुओ** [(णिय) वि-(सरूव)-(चुअ) भूकृ 1/1 अनि] ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णियदेहं [(णिय) वि–(देह) 2/1]। **अप्पाणं** (अप्पाण) 2/1। **अज्झवसदि** (अज्झवस) व 3/1 सक। **मूढदिट्ठी** [(मूढ) वि–(दिट्ठि) 1/1 वि]। **ओ** (अ)=खेद।

63 **जो** (ज) 1/1 सवि। **देहे**[1] (देह) 7/1। **णिरवेक्खो** (णिरवेक्ख) 1/1 वि। **णिद्दंदो** (णिद्दंद) 1/1 वि। **णिम्ममो** (णिम्मम) 1/1 वि। **णिरारंभो** (णिरारंभ) 1/1 वि। **आदसहावे** [(आद)–(स–हाव) 7/1]। **सुरओ** [(सु) अ=पूरी तरह–(रअ) भूकृ 1/1 अनि]। **जोई** (जोइ) 1/1। **सो** (त) 1/1 सवि। **लहइ** (लह) व 3/1 सक। **णिव्वाणं** (णिव्वाण) 2/1।

1. कभी-कभी पंचमी विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-136)

64 **परदव्वरओ** [(पर) वि–(दव्व)–(रअ) भूकृ 1/1 अनि]। **बज्झदि** (बज्झदि) व कर्म 3/1 सक अनि। **विरओ** (वि–रअ) भूकृ 1/1 अनि। **मुच्चेइ** (मुच्चेइ) व कर्म 3/1 सक अनि। **विविहकम्मेहिं**[2] [(विविह) वि–(कम्म) 3/2]। **एसो** (एत) 1/1 सवि। **जिणउवदेसो** [(जिण)–(उवदेस) 1/1]। **समासदो** (समास) पंचमी अर्थक 'दो' प्रत्यय। **बंधमुक्खस्स**[3] [(बंध)–(मुक्ख) 6/1]।

2. कभी-कभी पंचमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-136)।

3. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)

65 **परदव्वादो**[4] [(पर) वि–(दव्व) 5/1]। **दुग्गइ** (दुग्गइ) मूलशब्द[5] 1/1। **सद्दव्वादो** [(स)–(दव्व) 5/1]। **हु** (अ)=किन्तु। **सग्गई** (सग्गइ)

4. किसी कार्य का कारण बतलाने वाली संज्ञा में तृतीया या पंचमी का प्रयोग किया जाता है।

5. पद्य में किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द काम में लाया जा सकता है। (पिशलः प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 517)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

1/1 । **होई**[1] (हो) व 3/1 अक **इय** (अ)=इस तरह। **णाऊण** (णा) संकृ। **सद्दव्वे** [(स)वि–(दव्व) 7/1]। **कुणह** (कुण) विधि 2/2 सक। **रई** (रइ) 2/1 अपभ्रंश। **विरय** (विरय) 2/1 अपभ्रंश। **इयरम्मि**[2] (इयर) 7/1 वि।

1. छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया गया है।
2. कभी-कभी पंचमी विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-136)।

66 **आवसहावा** [(आद)–(सहाव) 5/1] **अण्णं** (अण्णं) 1/1 सवि। **सच्चित्ताचित्तमिस्सियं** [(सच्चित्त) + (अचित्तं) + (मिस्सियं)] [(सच्चित्त)–(अचित्त) 1/1 वि] मिस्सियं (मिस्सिय) 1/1 वि। **हवइ** (हव) व 3/1 अक। **तं** (त) 1/1] सवि। **परदव्वं** [(पर) वि–(दव्व) 1/1] **भणियं** (भण) भूकृ 1/1। **आवितत्थं** (क्रिविअ)= सच्चाई पूर्वक। **सव्वदरसीहिं** (सव्वदरसि) 3/2 वि.।

67 **दुट्ठट्ठकम्मरहियं**[3] [(दुट्ठ) + (अट्ठ) + (कम्म) + (रहियं)] [(दुट्ठ) वि–(अट्ठ) वि--(कम्म)–(रहिय) 2/1 वि.]। **अणोवमं**[3] (अणोवम) (अणोवम) 2/1 वि.। **णाणविग्गहं**[3] [(णाण)–(विग्गह) 2/1]। **णिच्चं**[3] (णिच्च) 2/1 वि.। **सुद्धं**[3] (सुद्ध) 2/1 वि,। **जिणेहिं** (जिण) 3/2 कहियं[3] (कह) भूकृ 2/1। **अप्पाणं**[3] (अप्पाण) 2/1। **हवदि** (हव) व 3/1 अक। **सद्दव्वं** [(स)–(दव्व) 1/1]।

3. कभी-कभी प्रथमा विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137 वृत्ति)।

68 **जे** (ज) 1/2 सवि। **झायंति** (झा)[4] व 3/2 सक। **सदव्वं** [(स)वि–(दव्व) 2/1]। **परदव्वपरंमुहा** [(पर) वि–(दव्व)–(परंमुह) 1/2 वि]। **हु** (अ)=निश्चय ही। **सुचरित्ता** [(सु) अ=सम्यक् प्रकार से–(चर)

4. अकारान्त धातुओं के अतिरिक्त अन्य स्वरान्त धातुओं में विकल्प से अ (य) जोड़ने के पश्चात् प्रत्यय जोड़ा जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संकृ] । ते (त) 1/2 सवि । जिणवराण (जिणवर) 6/2 । मग्गे[1] (मग्ग) 7/1 । अणुलग्गा (अणुलग्ग) भूकृ 1/2 अनि । लहन्ति (लह) व 3/2 सक । णिव्वाणं (णिव्वाण) 2/1 ।

1. कभी-कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है । (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-135)

69 वर[2] (अ)=अधिक अच्छा । वयतवेहि [(वय)-(तव) 3/2] । सग्गो (सग्ग) 1/1 । मा (अ)=नहीं । दुक्खं (दुक्ख) 1/1 । होउ (हो) विधि 3/1 अक । णिरइ (णिरअ) 7/1 अपभ्रंश । इयरेहिं (इयर) 3/2 वि. । छायातवट्ठियाणं[3] [(छाया)-(तव)-(ट्ठिय) 6/2] । पडिवालंताण[3] (पडिवाल) वकृ 6/2 । गुरुभेयं [(गुरु) वि-(भेय) 1/1] ।

2. अनुस्वार का लोप विकल्प से होता है । (हेम प्राकृत व्याकरण : 1-29)

3. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है । (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)

70 जो (ज) 1/1 सवि । इच्छइ[4] (इच्छ) व 3/1 सक । णिस्सरिउ[4] (णिस्सर) हेकृ । संसारमहण्णवाउ [(संसार)-(महण्णव) 5/1] । रुद्दाओ (रुद्द) 5/1 वि । कम्मिंधणाण [(कम्म)+(इंधणाण)] [(कम्म)-(इंधण) 6/2] । डहणं (डहण) 2/1 वि. । सो (त) 1/1 सवि । झायइ[5] (झा) व 3/1 सक । अप्पयं (अप्पय) 2/1 । सुद्धं (सुद्ध) 2/1 वि ।

4. 'इच्छा' अर्थ में हेकृ का प्रयोग होता है ।

5. अकारान्त धातुओं के अतिरिक्त अन्य स्वरान्त धातुओं में विकल्प से अ (य) जोड़ने के पश्चात् प्रत्यय जोड़ा जाता है ।

71 सव्वे (सव्व) 2/2 वि । कसाय (कसाय) मूलशब्द 2/2 । मोत्तुं (मोतुं) संकृ अनि । गारवमयरायदोसवामोहं [(गारव)-(मय)-(राय)-(दोस)-(वामोह) 2/1] । लोयववहारविरदो [(लोय)-(ववहार)-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(विरद) 1/1 वि]। **अप्पा** (अप्प) 2/1 अपभ्रंश। **झायइ** (झा)[1] व 3/1 सक। **झाणत्थो** (झाणत्थ) 1/1 वि।

1. देखें गाथा 70

72 **जं** (ज) 1/1 सवि। **मया** (मया) 3/1 स अनि। **(दिस्सदे)** व कर्म 3/1 सक अनि। **रूवं** (रूव)1/1। **तं** (त)1/1 सवि। **ण** (अ)=नहीं। **जाणादि** (जाणादि) व 3/1 सक अनि। **सव्वहा** (अ)=बिल्कुल। **जाणगं** (जाणग) 1/1 वि। **णं**[2] (अ)=नहीं। **तम्हा** (अ)=इसलिए। **जंपेमि**[3] (जंप) व 1/1 सक। **केण**[4] (क) 3/1 सवि। **हं** (अम्ह) 1/1 सं।

2. छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु यहाँ 'ण' पर अनुस्वार लगाया गया है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 1–26 वृत्ति)

3. 'सह' के योग में तृतीया का प्रयोग होता है। यहां 'सह' अर्थ छुपा है।

4. प्रश्नवाचक शब्दों के साथ वर्तमान काल का प्रयोग प्रायः इच्छार्थक रूप में भविष्यत् काल के अर्थ में होता है।

73 **जो** (ज) 1/1 सवि। **सुत्तो** (सुत्त) भूक 1/1 अनि। **ववहारे** (ववहार) 7/1। **सो** (त) 1/1 सवि। **जोई** (जोइ) 1/1। **जग्गए** (जग्ग) व 3/1 अक। **सकज्जम्मि** [(स)वि–(कज्ज) 7/1]। **जग्गदि** (जग्ग) व 3/1 अक। **अप्पणो** (अप्पण) 6/1। **कज्जे** (कज्ज) 7/1।

74 **इय** (अ)=इस तरह। **जाणिऊण** (जाण) संकृ। **जोई** (जोइ) 1/1। **ववहारं** (ववहार) 2/1। **चयइ** (चय, व 3/1 सक। **सव्वहा** (अ)=पूर्णतः। **सव्वं** (सव्व) 2/1 वि। **चयइ** (चय) व 3/1 सक। **झायइ** (झा)[5] व 3/1 सक। **परमप्पाणं** [(परम)+(अप्पाणं)] [(परम) वि–(अप्पाण) 2/1]। **जह** (अ)=जैसे। **भणियं** (भण) भूक 1/1। **जिणवरिंदेहिं** (जिणवरिंद) 3/2।

5. देखें गाथा 70

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

75 **तच्चरुई** [(तच्च)–(रुइ) 1/1]। **सम्मत्तं** (सम्मत्त) 1/1। **तच्चग्गहणं** [(तच्च)–(ग्गहण) 1/1]। **च** (अ)=और। **हवइ** (हव) व 3/1 अक। **सण्णाणं** (सं-ण्णाण) 1/1। **चारित्त** (चारित्त) 1/1। **परिहारो** (परिहार) 1/1। **पयंपियं** (पयंपिय) 1/1 वि। **जिणवरिंदेहिं** (जिणवरिंद) 3/2।

76 **जं** (ज) 2/1 सवि। **जाणिऊण** (जाण) संकृ। **जोई** (जोइ) 1/1। **परिहरं** (परिहर) 2/1। **कुणइ** (कुण) व 3/1 सक। **पुण्णपावाणं** [(पुण्ण)-(पाव) 6/2]। **तं** (त) 1/1 सवि। **चारित्तं** (चारित्त) 1/1। **भणियं** (भण) भूकृ 1/1। **अवियप्पं** (अवियप्प) 1/1 वि। **कम्मरहिएहिं** [(कम्म)–(रहिअ) 3/2 वि]।

77. **जो** (ज) 1/1 सवि। **रयणत्तयजुत्तो** [(रयण)–(त्तय)–(जुत्त) 1/1 वि]। **कुणइ** (कुण) व 3/1 सक। **तवं** (तव) 2/1। **संजदो** (संजद) 1/1 वि। **ससत्तीए** [(स) वि–(सत्ति) 6/1]। **सो** (त) 1/1 सवि। **पावइ** (पाव) व 3/1 सक। **परमंपयं** [(परम) वि–(पय) 2/1]। **झायंतो** (झा)[1] वकृ 1/1। **अप्पयं** (अप्प) 'य' स्वार्थिक प्रत्यय 2/1। **सुद्धं** (सुद्ध) 2/1।

1. देखें गाथा 70

78 **मयमायकोहरहिओ**[(मय)–(माय)–(कोह)–(रहिअ)[2] 1/1वि]। **लोहेण** (लोह) 3/1। **विवज्जिओ** (विवज्जिअ) 1/1 वि। **य** (अ)=तथा **जो** (ज) 1/1 सवि। **जीवो** (जीव) 1/1। **णिम्मलसहावजुत्तो** [(णिम्मल)–(सहाव)–(जुत्त) 1/1 वि]। **सो** (त) 1/1 सवि **पावइ** (पाव) व 3/1 सक। **उत्तमं** (उत्तम) 2/1 वि **सोक्खं** (सोक्ख) 2/1।

2. देखो गाथा 33.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

79 **परमप्पय**[1] (परमप्पय) मूलशब्द 2/1 । **झायंतो** (झा)[2] वकृ 1/1 । **जोई** (जोइ) 1/1 । **मुच्चेइ**(मुच्चेइ) व कर्म 3/1 सक अनि । **मलदलोहेण** [(मल)–(द) वि–(लोह) 3/1] । **णादियदि** [(ण)+(आदियदि)] ण (अ) = नहीं आदियदि (आदिय) व 3/1 सक । **णवं** (णव) 2/1 वि । **कम्मं** (कम्म) 2/1 । **णिद्दिट्ठं** (णिद्दिट्ठ) भूकृ 1/1 अनि । **जिणवरिंदेहिं** (जिणवरिंद) 3/2 ।

1. पद्य में किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द काम में लाया जा सकता है । (पिशलः प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 517)
2. देखो गाथा 70.

80 **होऊण** (हो) संकृ । **दिढचरित्तो** [(दिढ) वि–(चरित्त) 1/1] **दिढसम्मत्तेण** [(दिढ) वि–(सम्मत्त) 3/1] । **भावियमईओ** [(भाविय) वि–(मइ) 1/2] । **झायंतो** (झा)[3] वकृ 1/1 । **अप्पाणं** (अप्पाण) 2/1 । **परमपयं** [(परम) वि–(पय) 2/1] । **पावए** (पाव) व 3/1 सक । **जोई** (जोइ) 1/1 ।

3. देखो गाथा 70

81 **चरणं** (चरण) 1/1 । **हवइ** (हव) व 3/1 अक । **सधम्मो**[(स)–(धम्म) 1/1] **धम्मो** (धम्म) 1/1 । **सो** (त) 1/1 सवि । **अप्पसमभावो** [(अप्प)–(समभाव) 1/1] । **रागरोसरहिओ**[4] [(राग)–(रोस)–(रहिअ) 1/1 वि] । **जीवस्स** (जीव) 6/1 । **अणण्णपरिणामो** [(अणण्ण) वि–(परिणाम) 1/1 ।

4. देखो गाथा 33

82 **जह** (अ) = जैसे । **फलिहमणि**[5] (फलिहमणि) मूलशब्द 1/1 । **विसुद्धो** (विसुद्ध) 1/1 वि । **परदव्वजुदो** [(पर) वि–(दव्व)–(जुद) 1/1 वि] । **हवेइ** (हव) व 3/1 सक । **अण्णं** (अण्ण) 2/1 वि । **सो** (त) 1/1

5. कर्ता कारक के स्थान में केवल मूल संज्ञा शब्द भी काम में लाया जा सकता है । (पिशलः प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 518)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सवि। **तह** (अ) = वैसे ही। **रागादिविजुत्तो** [(राग) + (आदि) + (विजुत्तो)] [(राग)-(आदि)-(विजुत्त) 1/1 वि] । **जीवो** (जीव) 1/1। **हवदि** (हव) व 3/1 अक। **हु** (अ) = किन्तु । **अणण्णविहो** [(अण) + (अण्ण) + (विहो)] अणण्णविहो (अणण्णविह) 1/1 वि.।

83 **तवरहियं** [(तव)-(रहिय) 1/1 वि]। **जं** (अ) = चूंकि। **णाणं** (णाण) 1/1। **णाणविजुत्तो** [(णाण)-(विजुत्त) 1/1 वि]। **तवो** (तव) 1/1। **वि** (अ) = भी। **अकयत्थो** (अकयत्थ) 1/1 वि। **तम्हा** (अ) = इसलिए। **णाणतवेणं** [(णाण)-(तव) 3/1]। **संजुत्तो** (संजुत्त) 1/1 वि। **लहइ** (लह) व 3/1 सक। **णिव्वाणं** (णिव्वाण) 2/1।

84 **आहारासणणिद्दाजयं** [(आहार) + (आसण) + (णिद्दा) + (जयं)] [(आहार)-(आसण)-(णिद्दा)-(जय) 2/1]। **च** (अ) = तथा। **काऊण** (काऊण) संकृ अनि। **जिणवरमएण** [(जिणवर)-(मअ) 3/1]। **झायव्वो** (झा)[1] विधिकृ 1/1। **णियअप्पा** [(णिय) वि-(अप्प) 1/1]। **णाऊणं** (णा) संकृ। **गुरुपसाएण** [(गुरु)-(पसाअ) 3/1]।

1. देखो गाथा 70

85. **ताम** (अ) = तब तक। **ण** (अ) = नहीं। **णज्जइ** (णज्ज) व 3/1 सक। **अप्पा** (अप्प) 2/1 अपभ्रंश। **विसएसु** (विसअ) 7/2। **णरो** (णर) 1/1। **पवट्टए** (पवट्ट) व 3/1 अक। **जाम** (अ) = जब तक। **विसए**[2] (विसअ) 7/1। **विरत्तचित्तो** [(विरत्त)-(चित्त) 1/1]। **जोई** (जोइ) 1/1। **जाणेइ** (जाण) व 3/1 सक। **अप्पाणं** (अप्पाण) 2/1।

2. कभी कभी पंचमी विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है।

86 **परमाणुपमाणं** [(परमाणु)-(पमाण) 1/1]। **वा** (अ) = के समान। **परदव्वे** [(पर) वि-(दव्व) 7/1]। **रदि**[3] (रदि) मूलशब्द 1/1

3. देखो गाथा 82

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हवेदि (हव) व 3/1 अक। **मोहादो**[1] (मोह) 5/1। **सो** (त) 1/1 सवि। **मूढो** (मूढ) 1/1 वि। **अण्णाणी** (अण्णाणि) 1/1 वि। **आदसहावस्स** [(आद)-(सहाव) 6/1] । **विवरीओ** (विवरीअ) 1/1 वि।

1. किसी कार्य का कारण व्यक्त करने वाली संज्ञा में तृतीया या पंचमी होती है।

87 **जेण** (अ) = चूँकि। **रागो** (राग) 1/1। **परे** (पर) 7/1 वि। **दव्वे** (दव्व) 7/1। **संसारस्स** (संसार) 6/1। **हि** (अ) = ही। **कारणं** (कारण) 1/1। **तेणावि** [(तेण) + (अवि)] तेण (अ) = इसलिए अवि (अ) = ही। **जोइणो** (जोइ) 1/2 **णिच्चं** (अ) = सदैव। **कुज्जा** (कु) विधि 3/2 सक। **अप्पे** (अप्प) 7/1। **सभावणा** [(स) वि-(भावणा) 2/2]।

88 **णिंदाए** (णिंदा) 7/1। **य** (अ) = और। **पसंसाए** (पसंसा) 7/1। **दुक्खे**[2] (दुक्ख) 2/2। **य** (अ) = और। **सुहएसु** (सुह) 'अ' स्वार्थिक प्रत्यय 7/2। **य** (अ) = तथा। **सत्तूणं** (सत्तु) 6/2। **चेव** (अ) = और। **बंधूणं**[3] (बंधु) 6/2। **चारित्तं** (चारित्त) 1/1। **समभावदो** (समभाव) पंचमी अर्थक 'दो' प्रत्यय।

2. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)
3. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)

89 **णिच्छयणयस्स** (णिच्छयणय) 6/1। **एवं** (अ) = बिल्कुल ऐसा ही। **अप्पा** (अप्प) 1/1। **अप्पम्मि** (अप्प) 7/1। **अप्पणे** (अप्पणे) 4/1 अनि। **सुरदो** [(सु) अ = पूरी तरह से-(रद) भूकृ 1/1 अनि]। **सो** (त) 1/1 सवि। **होदि** (हो) व 3/1 अक। **हु** (अ) = ही। **सुचरित्तो** [(सु) अ = श्रेष्ठ-(चरित्त) 1/1] **जोई** (जोइ) मूलशब्द 1/1। सो (त) 1/1 सवि। **लहइ** (लह) व 3/1 सक। **णिव्वाणं** (णिव्वाव) 2/1।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

90 **ते** (त) 1/2 सवि । **धण्णा** (धण्ण) 1/2 वि । **सुकयत्था** [(सु) अ = पूरी तरह–(कयत्थ) 1/2 वि] । **सूरा** (सूर) 1/2 वि । **वि** (अ) = ही । **पंडिया** (पंडिय) 1/2 वि । **मणुया** (मणुय) 1/2 । **सम्मत्त** (सम्मत्त) 1/1 । **सिद्धियरं** (सिद्धियर) 1/1 वि । **सिविणे** (सिविण) 7/1 । **वि** (अ) = भी । **ण** (अ) = नहीं । **मइलियं** (मइल) भूक 1/1 **जेहिं** (ज) 3/2 सवि ।

91 **सम्म**[1] (सम्म) मूलशब्द 1/1 । **गुण**[1] (गुण) मूलशब्द 1/1 । **मिच्छ**[1] (मिच्छ) मूलशब्द 1/1 । **दोसो** (दोस) 1/1 । **मरणेण** (मरण) 3/1 । **परिभाविऊण** । (परिभाव) संकृ । **तं** (त) 2/1 सवि । **कुणसु** (कुण) विधि 2/1 सक । **जं** (ज) 1/1 सवि । **ते** (तुम्ह) 6/1 । **मणस्स**[2] (मण) 4/1 । **रुच्चइ**[2] (रुच्च) व 3/1 अक । **किं** (किं) 1/1 सवि । **बहुणा** (बहु) 3/1 वि । **पलविएणं** (पलविअ) 3/1 **तु** (अ) = भी ।

1. देखो गाथा 82 ।
2. रुचि-अर्थक क्रियायों के साथ रुचि रखने वाले व्यक्ति में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है ।

92 **वेरग्गपरो**[3] [(वेरग्ग)–(पर) 1/1 वि] । **साहू** (साहु) 1/1 । **पर-दव्वपरम्मुहो** [(पर) वि–(दव्व)–(परम्मुह) 1/1 वि] । **य** (अ) = और । **जो** (ज) 1/1 सवि । **होदि** (हो) व 3/1 अक । **संसारसुहविरत्तो** [(संसार)–(सुह)–(विरत्त) 1/1 वि] । **सगसुद्धसुहेसु** [(सग) 'ग' स्वार्थिक प्रत्यय–(सुद्ध) वि–(सुह) 7/2] । **अणुरत्तो** (अणुरत्त) 1/1 वि ।

3. समास के अन्त में होने से एक अर्थ 'लीन' होता है ।

93 **गुणगणविहूसियंगो** [(गुण) + (गण) + (विहूसिय) + (अंगो)] [(गुण)–(गण)–(विहूसिय)–(अंग) 1/1] । **हेयोपादेयणिच्छिओ** [(हेय) + (उपादेय) + (णिच्छिओ)] [(हेय)–(उपादेय)–(णिच्छिअ) भूक 1/1 अनि] । **साहू** (साहु) 1/1 । **झाणज्झयणे** [(झाण) + (अज्झयणे)]

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

[(झाण)–(अज्झयणे)] [(झाण)–(अज्झयण) 7/1]। **सुरदो** [(सु) अ=पूरी तरह–(रद) 1/1 वि]। **सो** (त) 1/1 सवि। **पावइ** (पाव) व 3/1 सक। **उत्तमं** (उत्तम) 2/1 वि **ठाणं** (ठाण) 2/1।

94 **अरूहा** (अरुह) 1/2। **सिद्धायरिया** [[(सिद्ध)+(आयरिया)] [(सिद्ध)–(आयरिय) 1/2]]। **उज्झाया** (उज्झाय) 1/2। **साहु**[1] (साहु) मूलशब्द 1/2। **पंच** (पंच) 1/2 वि। **परमेट्ठी** (परमेट्ठि) 1/2। **ते** (त) 1/2 सवि। **वि** (अ)=निश्चय ही। **हु** (अ)=चूंकि। **चिट्ठहिं** (चिट्ठ) व 3/2 अक अपभ्रंश। **आदे** (आद) 7/1। **तम्हा** (अ)=इसलिए। **आदा** (आद) 1/1 **हु** (अ)=ही। **मे** (अम्ह) 4/1 स। **सरणं** (सरण) 1/1।

1. देखो गाथा 82.

95 **सम्मत्तं** (सम्मत्त) 1/1। **सण्णाणं** [(स) वि–(ण्णाण) 1/1]। **सच्चारित्तं** [(स) वि–(च्चारित्त) 1/1]। **हि** (अ)=निश्चय ही। **सत्तवं** [(स) वि–(त्तव) 1/1]। **चेव** (अ)=तथा। **चउरो** (चउर) 1/2 वि। **चिट्ठहिं** (चिट्ठ) व 3/2 अक अपभ्रंश। **आदे** (आद) 7/1। **तम्हा** (अ)=इसलिए। **आदा** (आद) 1/1 **हु** (अ)=ही। **मे** (अम्ह) 4/1 स। **सरणं** (सरण) 1/1।

96 **धम्मेण** (धम्म) 3/1। **होइ** (हो) व 3/1 अक। **लिंगं** (लिंग) 1/1। **ण** (अ)=नहीं। **लिंगमत्तेण** [(लिंग)–(मत्त) 3/1]। **धम्मसंपत्ती**–[(धम्म)–(संपत्ति) 1/1]। **जाणेहि** (जाण) आज्ञा 2/1 सक। **भावधम्मं** [(भाव)–(धम्म) 2/1]। **किं** (किं) 1/1 सवि। **ते** (त) 4/1 सवि। **लिंगेण** (लिंग) 3/1। **कायव्वो**[2] (का) विधिकृ 1/1।

2. यहाँ विधि का प्रयोग भविष्य अर्थ में हुआ है।

97 **सीलस्स**[3] (सील) 6/1। **य**[4] (अ)=और। **णाणस्स**[3] (णाण) 6/1।

3. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)

4. कभी-कभी 'और' अर्थ को प्रकट करने के लिए 'य' का प्रयोग दो बार किया जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णत्थि अ = नहीं । **विरोहो** (विरोह) 1/1 । **बुधेहि** (बुध) 3/2 वि । ***णिद्दिट्ठो*** *(णिद्दिट्ठ)* भूक 1/1 अनि । **णवरि** *(अ)* = केवल । **य** *(अ)* = किन्तु । **सीलेण**[1] (सील) 3/1 । **विणा**[1] (अ) = बिना । **विसया** (विसय) 1/2 । **णाणं** (णाण) 2/1 । **विणासंति** (विणास) व 3/2 सक ।

1. 'बिना' के योग में तृतीय, द्वितीया या पंचमी विभक्ति होती है ।

98 **णाणस्स** (णाण) 6/1 । **णत्थि** (अ) = नहीं । **दोसो** (दोस) 1/1 । **कापुरिसाणं** (कापुरिस) 6/2 । **वि** (अ) = ही । **मंदबुद्धीणं** [(मंद)–(बुद्धि) 6/2 । **जे** (ज) 1/2 सवि । **णाणगव्विदा** [(णाण)–(गव्विद) 1/2 सवि] । **होऊणं** (हो) संकृ । **विसएसु** (विसअ) 7/2 । **रज्जंति** (रज्ज) व 3/2 अक ।

99 **वायरणछंदवइसेसियववहारणायसत्थेसु**[2] [(वायरण)-(छंद)-(वइसेसिय)-(ववहार)–(णाय)–(सत्थ) 7/2] । **वेदेऊण** (वेद) संकृ । **सुदेसु**[2] (सुद) 7/2 । **य** (अ) = और । **तेव** [(ते) + (एव)] । ते (तुम्ह) 4/1 सवि एव (अ) = ही । **सुयं** (सुय) भूकृ 1/1 अनि । **उत्तमं** (उत्तम) 1/1 वि । **सीलं** (सील) 1/1 ।

2. कभी कभी द्वितीय विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है । (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-135)

100 **जीवदया** [(जीव)–(दया) 1/1] । **दम**[3] (दम) मूलशब्द 1/1 । **सच्चं** (सच्च) 1/1 । **अचोरियं** (अचोरिय) 1/1 । **बंभचेरसंतोसे** [(बंभचेर)–(संतोस) 1/1] । **सम्मद्दंसण** (सम्मद्दंसण)[3] मूलशब्द 1/1 । **णाणं** (णाण) 1/1] । **तओ** (तअ) 1/1 । **य** (अ) = और । **सीलस्स** (सील) 6/1 । **परिवारो** (परिवार) 1/1 ।

3. देखो गाथा 82

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ सुधार

अष्टपाहुड चयनिका क्रम	पाठ क	पाठ ख	पाठ ग
1	सम्मत्तरयणभठ्ठा	सम्मत्तरयणभट्टा	*सम्मत्तरयणभट्ठा
2	बन्धुच्चिय	*बंधुच्चिय	*बंधुच्चिय
3	भट्ठ वि भट्ठा	*भट्ठविभट्ठा	*भट्ठविभट्ठा
7	अप्पाणं	अप्पाणं	*अप्पा णं
10	ससुत्ता	*असुत्ता	*असुत्ता
12	सूत्तत्थं	*सुत्तत्थं	*सुत्तत्थं
13	सूत्तं	*सुत्तं	*सुत्तं
14	णिरव सेसाइं	*णिरवसेसाइं	*णिरवसेसाइं
17	····भाणसंजुत्ता	*भावसंजुत्ता	*भावसंजुत्ता
18	णाऊं	*णाउं	*णाउं
19	अप्पासु परं	*अप्पासु परं	*अप्पा सुपरं
21	ण वि	*णवि	*णवि
	मोक्खमग्गस	*मोक्खमग्गस्स	*मोक्खमग्गस्स

क अष्टपाहुड सं. पं. जयचंदजी छाबड़ा (श्री पाटनी दि. जैन ग्रन्थमाला, मारोठ 1950 राजस्थान)

ख कुन्दकुन्दभारती (अष्टपाहुड) सं. पं. पन्नालालजी (श्रुत भण्डार व ग्रन्थ प्रकाशन साहित्याचार्य समिति, फल्टण (महाराष्ट्र) 1970

ग अष्टपाहुड सं. पं. मोतीलाल गौतमचंद कोठारी (श्री आचार्य शांतिसागर दि. जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था, फल्टण (महाराष्ट्र)

* स्वीकृत पाठ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अष्टपाहुड चयनिका क्रम	पाठ क	पाठ ख	पाठ ग
25	पसंसणिद्दा	पसंसणिद्दा	*पसंसणिदा
28	विन्ति	विति	*बिति
31	भमिओसि	भमिओसि	*भमिओ सि
35	इच्छसि	इच्छसि	*इच्छह
37	णिम्मित्तो	*णिमित्तो	*णिमित्तो
38	आणम	*जाणम	*जाणम
40	सुह धम्मं	*सुहधम्मं	*सुह धम्मं
41	इदिजिण	*इदि जिण	*इदि जिण
42	पुणु	*पुण	पुणु
43	णाणज्झयणो	णाणज्झयणो	*झाणज्झयणो
59	परमंतरवाहिरो देहीणं	परब्भितर बाहिरो *हेऊणं	*परब्भितरबाहिरो *हेऊणं
	अंतोवाएण	*अंतोवायेण	*अंतोवायेण
62	चओ	*चुओ	*चुओ
66	आदसहावादण्णं	आदसहावादण्णं	*आदसहावा अण्णं
68	लहइ	लहदि	*लहन्ति
71	मुत्तं	*मोत्तु	*मोत्तु
94	परमेठ्ठी	*परमेट्ठी	*परमेट्ठी
	आधे	*आदे	*आदे
95	य	*हि	*हि
97	णिद्दिठ्ठो	*णिद्दिट्ठो	*णिद्दिट्ठो
98	कप्पुरिसाणो मंदबुद्धीणो	कापुरिसाणो मंदबुद्धीणो	*कापुरिसाणं *मंदबुद्धीणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अष्टपाहुड चयनिका एवं अष्टपाहुड गाथा–क्रम

अष्टपाहुड चयनिका क्रम	गाथा क्रम
दर्शनपाहुड	
1	4
2	7
3	8
4	15
5	16
6	17
7	20
8	21
9	31
सूत्रपाहुड	
10	3
11	4
12	5
13	6
14	15
15	16
चारित्रपाहुड	
16	15
17	41
18	42
19	43
बोधपाहुड	
20	20
21	21
22	22
23	23
24	25
25	47
26	48
27	50
भावपाहुड	
28	2
29	3
30	6
31	30
32	43
33	56
34	57
35	60
36	61
37	62

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अष्टपाहुड चयनिका क्रम	भावपाहुड गाथा क्रम	अष्टपाहुड चयनिका क्रम	मोक्षपाहुड गाथा क्रम
38	64	61	7
39	66	62	8
40	76	63	12
41	77	64	13
42	86	65	16
43	89	66	17
44	90	67	18
45	95	68	19
46	116	69	25
47	123	70	26
48	124	71	27
49	132	72	29
50	143	73	31
51	144	74	32
52	147	75	38
53	151	76	42
54	154	77	43
55	156	78	45
56	158	79	48
57	159	80	49
मोक्षपाहुड		81	50
58	3	82	51
59	4	83	59
60	5	84	63

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अष्टपाहुड चयनिका क्रम	मोक्षपाहुड गाथा क्रम	अष्टपाहुड चयनिका क्रम	मोक्षपाहुड गाथा क्रम
85	66	94	104
86	69	95	105
87	71	**लिंगपाहुड**	
88	72	96	2
89	83	**शीलपाहुड**	
90	89	97	2
91	96	98	10
92	101	99	16
93	102	100	19

अष्टपाहुड सं. पं. जयचन्द जी छाबड़ा (श्री पाटनी दि. जैन ग्रंथमाला, मारोठ. राजस्थान) 1950

		गाथा संख्या	चयनित गाथाएँ
1.	दर्शनपाहुड	36	9
2.	सूत्रपाहुड	27	6
3.	चारित्रपाहुड	45	4
4.	बोधपाहुड	62	8
5.	भावपाहुड	165	30
6.	मोक्षपाहुड	106	38
7.	लिंगपाहुड	22	1
8.	शीलपाहुड	40	4
		503	100

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सहायक पुस्तकें एवं कोश

1. अष्टपाहुड : सम्पादक : पं. जयचन्दजी छाबड़ा (श्री पाटनी दि. जैन ग्रन्थमाला, मारोठ, राजस्थान)

2. कुम्बकुन्द भारती (अष्टपाहुड) : सम्पादक : पं. पन्नालालजी साहित्याचार्य (श्रुत भण्डार व ग्रन्थ प्रकाशन समिति, फल्टण, महाराष्ट्र)

3. अष्टपाहुड : सम्पादक : पं. मोतीलाल गौतमचन्द कोठारी (श्री आचार्य शांतिसागर दि. जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था, फल्टण, महाराष्ट्र)

4. समणसुत्तं : (सर्व-सेवा-संघ प्रकाशन, वाराणसी)

5. हेमचन्द्र प्राकृत व्याकरण भाग 1-2 : व्याख्याता श्री प्यारचंदजी महाराज (श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय, मेवाड़ी बाजार, ब्यावर, राजस्थान)

6. प्राकृत भाषाओं का व्याकरण : डा. आर. पिशल (बिहार-राष्ट्र-भाषा-परिषद, पटना)

7. अभिनव प्राकृत व्याकरण : डा. नेमिचन्द्र शास्त्री (तारा पब्लिकेशन, वाराणसी)

8. प्राकृत भाषा एवं साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डा. नेमिचन्द्र शास्त्री (तारा पब्लिकेशन, वाराणसी)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

9. प्राकृत मार्गोपदेशिका : पं. बेचरदास जीवराज दोशी
(मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली)

10. संस्कृत निबन्ध-दर्शिका : वामन शिवराम आप्टे
(रामनारायण बेनीमाधव, इलाहबाद)

11. प्रौढ़-रचनानुवाद कौमुदी : डा. कपिलदेव द्विवेदी
(विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी)

12. पाइअ-सद्द-महण्णवो : पं. हरगोविन्ददास त्रिकमचन्द सेठ
(प्राकृत ग्रंथ परिषद, वाराणसी)

13. संस्कृत-हिन्दी कोश : वामन शिवराम आप्टे
(मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली)

14. Sanskrta-English Dictionary : M. Monier Williams
(Munshiram Manoharlal, New Delhi)

15. बृहत् हिन्दी कोश : सम्पादक : कालिकाप्रसाद आदि
(ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस)

* * *

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org